श्रावकप्रतिक्रमणपाठ

(साङ्गोपाङ्ग विधिसहित)

प्राचीन शास्त्रोंके आधारसे सङ्कलित

●

सम्पादक

फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

●

प्रकाशक

सेठ भागीलालजी पाटनी

कोडरमा, पो०—झूमरीतलैया

मूल्य सदुपयोग

प्रकाशक
सेठ भाखीलालजी पाटनी
कोडरमा, पो० - झूमरीतलैया

मुद्रक-

सम्पादकीय

विषय-परिचय—

मुनि और गृहस्थ दोनों ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसम्पन्न होते हैं इसमें कोई अन्तर नहीं है, जो अन्तर है वह केवल सम्यकचरित्रकी दृष्टिसे ही है। मुनि सकलचारित्रका अनुसरण करते हैं और गृहस्थ एकदेशचारित्रका। इसलिए आचारका प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रोंमें मुनियोंकी दृष्टिसे जिन छह आवश्यक कर्मोंका निर्देश किया है उनका पालन गृहस्थोंको भी करना चाहिए यह इसी दृष्टि से कहा गया है। वे छह आवश्यक कर्म ये हैं— सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग। जो पाँच इन्द्रियोंके विषय, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके अधीन नहीं होता उसका नाम अवश्य है और उसके द्वारा भावपूर्वक जो क्रियाकर्म किया जाता है उसे आवश्यक कहते हैं। ये छह हैं। राग और द्वेषकी निवृत्तिपूर्वक समभाव अर्थात् माध्यस्थ्य भावका अभ्यास करना तथा जीवन-मरण, लाभालाभ, संयोग-वियोग, शत्रु-मित्र, स्वर्ण-पाषाण और सुख-दुखमें समता भाव धारण करना सामायिक है। मोक्षमार्गमें आदर्शरूप ऋषभ आदि चौबीस तीर्थङ्करोंकी नाम निरुक्ति पूर्वक गुणोंका स्मरण करते हुए स्तुति करना चतुर्विंशति स्तव है। पञ्च परमेष्ठीके प्रति तथा आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर और गणधर आदिके प्रति बहुमानके साथ आदर प्रकट करना वन्दना है। किसी एक तीर्थकरके प्रति बहुमानके साथ जो आदर प्रकट किया जाता है वह भी वन्दना है। कृतिकर्म, चितिकर्म, पूजाकर्म और विनयकर्म ये वन्दनाके पर्यायवाची नाम हैं। जिस अक्षरोच्चाररूप वाचनिक क्रियाके, परिणामोंकी विशुद्धिरूप मानसिक क्रियाके और नमस्कारादिरूप कायिक क्रियाके करनेसे ज्ञानावरणादि रूप आठ प्रकारके कर्मोंका 'कृत्यते छिद्यते' कर्तन या छेदन होता है उसे कृतिकर्म कहते हैं। यह सामान्य शब्द

है जो विशेषरूपसे वन्दनाके अर्थमें प्रयुक्त होकर भी सामायिक आदि सभीकी प्रयोगविधिके लिए प्रयुक्त हुआ है। वन्दना पुण्य सञ्चयका कारण है, इसलिए मुख्यतासे इसे चितिकर्म भी कहते हैं। इसमें चौबीस तीर्थंकरों और पाँच परमेष्ठी आदिकी पूजा (वन्दना) की जाती है, इसलिए इसे पूजाकर्म भी कहते हैं। तथा इसके द्वारा मोक्षमार्गके अनुरूप उत्कृष्ट विनय प्रकाशित होती है, इसलिए इसे विनयकर्म भी कहते हैं। यहाँ पर विनयकी **'विनीयते निराक्रियते'** ऐसी व्युत्पत्ति करके इसका फल कर्मोंका संक्रमण, उदय और उदीरणा आदि द्वारा नाश करना भी बतलाया गया है। तात्पर्य यह है कि वन्दना जहाँ कर्मोंकी निर्जराका कारण है वहाँ वह उत्कृष्ट पुण्य सञ्चयका हेतु और विनय गुणका मूल है। अपनी निन्दा और गर्हासे युक्त होकर पूर्वकृत अपराधोंका शोधन करना प्रतिक्रमण है। इस जीवकी वीतराग भावसे हट कर जो रागादिरूप या व्रतोंके स्खलनरूप प्रवृत्ति होती है उसका परिशोधन कर पुनः वीतराग भावमें अपने आत्माको स्थापित करना प्रतिक्रमण है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इसके दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, मासिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक, ऐर्यापथिक और उत्तमार्थ ये सात मुख्य भेद हैं। आगामी कालकी अपेक्षा अयोग्य द्रव्यादिकका त्याग करना प्रत्याख्यान है तथा दिवस आदिके नियम पूर्वक जिनेन्द्रदेवके गुणों आदिका चिन्तवन करते हुए शरीरका उत्सर्ग करना कायोत्सर्ग है।

ये छह आवश्यक कर्म मुनियोंके समान गृहस्थोंको भी करने चाहिए इसका निर्देश करते हुए अमितिगति आचार्य अपने श्रावकाचारके आठवें अध्यायमें कहते हैं—

उत्कृष्टश्रावकेणैते विधातव्याः प्रयत्नतः।
अन्यैरेते यथाशक्ति संसारान्तं यियासुभिः॥ ७१ ॥

उत्कृष्ट श्रावकको ये आवश्यक कर्म प्रयत्नपूर्वक करने चाहिए। तथा संसारका अन्त चाहनेवाले अन्य श्रावकोंको ये यथाशक्ति करने चाहिए॥७१॥

वे आगे पुनः कहते हैं—

आवश्यकमिदं प्रोक्तं नित्यं व्रतविधायिनाम् ।
नैमित्तिकं पुनः कार्यं यथागममतन्द्रितैः ॥ १०५ ॥

व्रती श्रावकोंको प्रतिदिन करने योग्य ये आवश्यक कर्म कहे हैं । उन्हें आलस्यका त्याग कर ये कर्म तो प्रतिदिन करने ही चाहिए तथा नैमित्तिक आवश्यक कर्म भी आगममें बतलाई गई विधिके अनुसार करने चाहिए ॥१०५॥

पण्डितप्रवर आशाधर जी सागरधर्मामृतके छटे अध्यायमें भी इस तथ्यका समर्थन करते हुए कहते हैं—

अथेर्यापथसंशुद्धिं कृत्वाभ्यर्च्य जिनेश्वरम् ।
श्रुतं सूरिं च तस्याग्रे प्रत्याख्यानं प्रकाशयेत् ॥ ११ ॥

ईर्यापथशुद्धि करके तथा जिनदेव, शास्त्र और गुरुकी पूजा करके गुरुके समक्ष प्रत्याख्यानको प्रकाशित करे ॥ ११ ॥

इन आवश्यक कर्मोंके करनेके सम्बन्धमें सामान्य नियम यह है कि सर्व प्रथम ईर्यापथशुद्धि करके सामायिक आवश्यकको करे और समता भाव में रहते हुए चतुर्विंशतिस्तव आदि आवश्यक कर्म करे । इसलिए यहाँ पर प्रश्न यह होता है कि पण्डितप्रवर आशाधरजीने उक्त श्लोकमें ईर्यापथ शुद्धिके बाद सामायिक आवश्यकका निर्देश क्यों नहीं किया । समाधान यह है कि जो विनय लोकानुरोधवश की जाती है वह लोकानुवृत्तिविनय है और जो अन्तरङ्गमें सम्यग्दर्शनरूप परिणामके सद्भावमें व्यवहार धर्मके अङ्गरूपसे होती है वह औपचारिक विनय है । इसलिए इन दोनों विनयोंमें कदाचित् एक समान क्रियाके होने पर भी महान् अन्तर है । लोकानुवृत्ति विनय या तो समाजमें अपनी तथा दूसरेकी मान-प्रतिष्ठा बढ़े या परलोकमें मुझे स्वर्गादिकी प्राप्ति हो इस अभिप्रायसे की जाती है और औपचारिक विनय मोक्षमार्गमें निमित्तभूत देव, गुरु और शास्त्रमें अनुराग वश होती है। पण्डितप्रवर आशाधरजीने उक्त श्लोककी टीकामें उक्त क्रियाको जघन्य वन्दना विधि कहकर यह प्रकट किया है कि श्रावकको साङ्गोपाङ्ग वन्दनाविधि अपने घरके चैत्यालयमें कर लेनी चाहिए और उसके बाद श्री जिन मन्दिर में जाकर यह विधि करनी चाहिए । उनके ऐसा कथन करनेके पीछे जो भी

हेतु हो, इतना स्पष्ट है कि त्रिकाल वन्दनामें सामायिक आवश्यकको प्रथम स्थान है और उसीके कालमें तत्पूर्वक वन्दनाविधि आदिके करनेका नियम है। यह कोरा हमारा ही कथन हो ऐसा नहीं है। किन्तु सामायिक प्रतिमाका लक्षण करते हुए बतलाया है—

जिणवयण-धम्म-चेइय-परमेट्ठि-जिणालयाण णिच्चं पि।
जं वंदणं तियालं कीरइ सामाइयं तं खु॥

जिन वचन (शास्त्र), धर्म, चैत्य, पाँच परमेष्ठी और जिनालय इनकी तीनों कालोंमें जो नित्य वन्दना की जाती है वह सामायिक प्रतिमा है।

इसका अभिप्राय यह है कि व्रतप्रतिमामें त्रिकाल वन्दना सातिचार भी हो सकती है पर सामायिक प्रतिमामें वह निरतिचार ही होनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि जो सामायिक आदि आवश्यक छह कर्म बतलाये हैं उनको यथा-विधि करना प्रत्येक श्रावकका आवश्यक कर्तव्य है। उन्हें नहीं करने पर वह व्रती संज्ञाको नहीं प्राप्त होता।

यहाँ पर सामायिक आदि छहों आवश्यकोंका विस्तारसे विवेचन करना हमारा प्रयोजन नहीं है, क्योंकि प्रस्तुत पुस्तक जिसके लिए यह प्रस्तावना लिखी जा रही है, श्रावकोंकी प्रतिक्रमणविधि तक ही सीमित है। पूर्वमें थोड़ा बहुत जो कुछ भी हमने लिखा है वह केवल यह बतलानेके लिए ही लिखा है कि किसी भी श्रावकको यह नहीं समझना चाहिए कि ये छह आवश्यक कर्म केवल मुनियोंके लिए ही करने योग्य बतलाये गये हैं। मुनियों को तो इनका पालन करना ही चाहिए। किन्तु गृहस्थ होकर जो व्रती हैं उन्हें भी इनका पालन करना चाहिए। हम यह जानते हैं कि कुछ कालसे दिगम्बर परम्परामें यह विधि बहुत ही सूक्ष्म मात्रामें रह गई है। श्वेताम्बर परम्पराकी हमें साधिकार जानकारी तो नहीं है। पर जहाँ तक हम समझते हैं गृहस्थोंमें उस परम्परामें भी इसका अभाव ही दिखाई देता है। उस परम्परामें सांवत्सरी प्रतिक्रमणमें कुछ गृहस्थ सम्मिलित अवश्य होते हैं पर मोक्षमार्गकी दृष्टिसे वैयक्तिक रूपसे इस विधिके करनेमें जो महत्त्व है वह सामूहिक रूपसे करनेमें नहीं, इसलिए यदि यह कहा जाय

कि दोनों परम्पराओंमें इस विधिका एक प्रकारसे विच्छेद ही हो गया है तो कोई अत्युक्ति नहीं प्रतीत होती। जो गृहस्थ व्रतोंका आचरण करते हैं उनका वैसा करते हुए दोष नहीं लगता होगा यह तो कहा नहीं जा सकता। कदाचित् बाह्य दोष न भी लगे तो भी परिणामोंकी सम्हाल होना अत्यन्त आवश्यक है। मोक्षमार्ग पर आरोहण करना कोई हँसी खेल नहीं है। ऊपरी कुछ नियम ले लिये, हाथ चक्कीका आटा खाने लगे, जैनीके हाथका भरा हुआ पानी पीने लगे, सबके साथ मिल कर आठ द्रव्योंसे पूजा कर ली, सामायिकके कालमें णमोकार मन्त्रकी माला फेर ली, या इसीके अनुरूप और दूसरे प्रकारकी क्रिया कर ली यह स्वयं अपनेमें मोक्षमार्ग नहीं है। मोक्षमार्गीके बाह्य क्रिया कुछ इस प्रकारकी होती है यह अन्य बात है और मोक्षमार्गी होना अन्य बात है। जो अपने निजात्माकी प्रतीतिके साथ अन्तरंगमें अपने परिणामोंकी सम्हाल करता है उससे बाह्य क्रिया तदनुरूप बनती ही है। वह मनमें किसीके प्रति असद्भाव नहीं रख सकता, वचनसे जो कहता है उसे भूले बिना उसका निर्वाह करता है। जो बोलता है वह अनुवीची ही बोलता है। कायसे भी ऐसी ही क्रिया करता है जो अन्तरंग परिणामोंके अनुरूप होती है। इसलिए मोक्षमार्गमें मुख्य प्रयोजन अपने परिणामोंकी सम्हाल करना है। इस दृष्टिसे विचार करने पर जीवनमें प्रतिक्रमणका क्या स्थान है यह अनायास ही समझमें आ जाता है।

प्रतिक्रमण 'प्रति' और 'क्रमण' इन दो शब्दोंके मेल से बना है। इसका अर्थ है वापिस आना। जिस व्रत संयमरूप पर्यायमें कारणवश कुछ दोष लगा है या उसकी आंशिक या सर्वथा हानि हुई है उसके परिहार द्वारा लौट कर पुनः उस पर्यायको प्राप्त करना प्रतिक्रमण है। भविष्यमें कोई दोष न लगे इस अभिप्रायसे प्रत्याख्यान किया जाता है और अतीतमें सूक्ष्म या स्थूल जो दोष लगे हों उनका परिहार करनेके अभिप्रायसे प्रतिक्रमण किया जाता है। जिसे अन्यत्र प्रायश्चित्त तप शब्द द्वारा व्यवहृत किया गया है व्यापक अर्थ में उसे प्रतिक्रमणका नामान्तर ही समझना चाहिए। शास्त्रकारोंने इसका छह प्रकारसे निक्षेप करके इसके सात भेद बतलाये हैं। भेदोंका नामोल्लेख

हम पहले कर ही आये हैं। इसमें प्रतिक्रमण करनेवाला, वह वस्तु जिसका प्रतिक्रमण किया जाता है और प्रतिक्रमणरूप परिणाम तथा क्रिया ये तीन मुख्य हैं। द्रव्यादिके निमित्तसे राग-द्वेष आदिरूप प्रवृत्ति होकर अन्तरंग और बहिरंग व्रतोंमें जो दोष लगते हैं उनका परिहार करना इसका मुख्य प्रयोजन है। जो प्रतिक्रमण करता है उसे सर्व प्रथम समताभावमें स्थित होकर सिद्धभक्ति आदि कृतिकर्म करके अनन्तर अपने बैठनेके स्थान चटाई आदिकी प्रतिलेखना करके तथा दोनों हाथोंको जोड़कर स्वच्छ मनसे सब प्रकारके गारव-मानका त्याग कर अपने कृत दोषकी आलोचना करनी चाहिए। यह आलोचना दैवसिक आदिके भेदसे सात प्रकारकी होनेसे प्रतिक्रमण भी सात प्रकारका माना गया है। कर्म दो प्रकार के होते हैं— प्रथम आभोगकृत और दूसरा अनाभोगकृत। जो कर्म अन्य सबको ज्ञात हो वह आभोगकृत कर्म कहलाता है और जो अन्य किसीको ज्ञात न हो वह अनाभोगकृत कर्म कहलाता है। इस प्रकार जो मनसे, वचनसे या कायसे किया गया कर्म है उस सबकी गुरुकी साक्षीपूर्वक आलोचना करनी चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस प्रतिक्रमणमें भावप्रतिक्रमणकी मुख्यता है, द्रव्य प्रतिक्रमण की नहीं, क्योंकि द्रव्यप्रतिक्रमणके करने पर भी भाव प्रतिक्रमणके बिना वह कर्म निर्जराका साधक नहीं होता, इसलिए प्रत्येक व्रतीको यथाविधि और यथाकाल भावप्रतिक्रमणपूर्वक ही द्रव्यप्रति-क्रमण अवश्य करना चाहिए।

प्रतिक्रमणके सात भेद हैं। उनमेंसे दैवसिक और रात्रिक प्रतिक्रमणकी विधि इस पुस्तकमें दी गई है। वहाँ इतना विशेष समझना चाहिए कि प्रातःकाल और सायंकाल जो वन्दनाका समय है उस कालमें ही प्रातःकाल के समय रात्रिक प्रतिक्रमण और सायंकालके समय दैवसिक प्रतिक्रमण क्रिया जाता है। शेष प्रतिक्रमण जिनके जो नाम हैं उनके अनुसार उस उस कालमें किये जाते हैं। सायंकालीन वन्दनाका काल सूर्यास्तके पूर्व तीन घड़ीसे लेकर रात्रिकी तीन घड़ी होने तक कुल छह घड़ी है, इसलिए इस कालमें दैवसिक प्रतिक्रमण करना चाहिए। तथा प्रातःकालीन वन्दना-

का काल सूर्योदयके पूर्व तीन घड़ीसे लेकर सूर्योदयके बाद तीन घड़ी तक कुल छह घड़ी है, इसलिए इस कालमें रात्रिक प्रतिक्रमण करना चाहिए।

मूलाचार षडावश्यक अधिकारकी गाथा १०३ में पूर्वाह्न और अपराह्नमें प्रत्येक समय प्रतिक्रमण करते समय चार क्रियाकर्म करने चाहिए इसका निर्देश किया है। उसकी टीका करते हुए आचार्य वसुनन्दिने प्रतिक्रमणमें चार क्रियाकर्म कैसे होते हैं इसका खुलासा करते हुए लिखा है—

आलोचनाभक्तिकरणे कायोत्सर्ग एकं क्रियाकर्म तथा प्रतिक्रमण-भक्तिकरणे कायोत्सर्गः द्वितीयं क्रियाकर्म तथा वीरभक्तिकरणे कायोत्सर्गस्तृतीयं क्रियाकर्म तथा चतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तिकरणे शान्तिहेतोः कायोत्सर्गश्चतुर्थं क्रियाकर्म।

आलोचनाभक्ति करनेमें कायोत्सर्ग एक क्रियाकर्म तथा प्रतिक्रमण-भक्ति करनेमें कायोत्सर्ग दूसरा क्रियाकर्म तथा वीरभक्ति करनेमें कायोत्सर्ग तीसरा क्रियाकर्म तथा शान्तिके लिए चतुर्विंशतितीर्थंकरभक्ति करनेमें कायोत्सर्ग चौथा क्रियाकर्म इसप्रकार प्रतिक्रमणमें ये चार क्रियाकर्म होते हैं।

एक क्रियाकर्ममें क्या विधि की जाती है इसका निर्देश षट्खण्डागम कर्मअनुयोगद्वारमें एक सूत्र द्वारा किया गया है। वह इस प्रकार है—

तमादाहिणं पदाहिणं तिक्खुत्तं तियोणदं चदुसिरं बारसावत्तं तं सव्वं किरियाकम्मं णाम॥ २८॥

आत्माधीन होना, प्रदक्षिणा करना, तीन बार करना, तीन बार अवनति, चार बार सिर नवाना और बारह आवर्त यह सब क्रियाकर्म है॥ २८॥

कर्मअनुयोगद्वारमें क्रियाकर्मकी यह विधि वन्दना आवश्यककी मुख्यतासे दी गई है। किन्तु प्रतिक्रमण आवश्यकमें तीन प्रदक्षिणा नहीं की जातीं। इस बातको ध्यानमें रख कर मूलाचार षडावश्यक अधिकारमें क्रियाकर्मकी सामान्य विधि इस प्रकार उपलब्ध होती है—

दोणदं तु जधाजादं बारसावत्तमेव य।
चदुस्सिरं तिसुद्धं च किदियम्मं पउंजदे॥ १०४॥

दो अवनति, यथाजात होना अर्थात् रागादि विकार भावोंसे निवृत्त होकर आत्माधीन होना, बारह आवर्त, चार बार सिर नवाना, मन, वचन और कायकी शुद्धि इस प्रकार आवश्यक विधिको सम्पन्न करनेवाला मुनि या गृहस्थ इस विधिके साथ क्रियाकर्मका प्रयोग करता है।

यहाँ क्रियाकर्मका निर्देश करते हुए कितनी बार अवनति करे, कितने बार सिर नवावे इत्यादि विधिका ही निर्देश किया गया है पर यह सब विधि क्या करते हुए किस प्रकार सम्पन्न करे यह कुछ नहीं बतलाया गया है। इस प्रकार इस बातको ध्यानमें रख कर आचार्य वसुनन्दिने कृतिकर्मका यह लक्षण कहा है—

सामायिकस्तवपूर्वककायोत्सर्गश्चतुर्विंशतितीर्थंकरस्तवपर्यन्तः कृतिकर्मेत्युच्यते।

सामायिक स्तवपूर्वक कायोत्सर्ग करके चतुर्विंशति तीर्थंकर स्तव करने तक जो विधि की जाती है उसे कृतिकर्म कहते हैं।

यहाँ प्रत्येक क्रियाकर्ममें सामायिक स्तवका पाठ, कायोत्सर्ग और चौबीस तीर्थङ्कर स्तव ये तीन कार्य मुख्य हैं। इन्हें सम्पन्न करते हुए कहाँ सिर नवाकर प्रणाम करे, कहाँ भूमिमें बैठकर पंचांग नमस्कार करे और कहाँ पर तीन आवर्त करे आदि सब उल्लेख आचार्य वीरसेनने कर्मअनुयोगद्वारमें पूर्वोक्त सूत्रकी व्याख्याके प्रसङ्गसे किया ही है और यथास्थान अन्य आचार्योंने भी किया है। प्रस्तुत पुस्तकमें उसे ध्यानमें रख कर ही विधि का सब क्रम रखा गया है। इतना अवश्य है कि प्रत्येक भक्तिका पाठ होनेके बाद उसकी आलोचना बैठकर पढ़नी चाहिये, प्रस्तुत पुस्तक में हम इसका निर्देश करना भूल गये हैं सो उस उस स्थान पर इतना और समझ लेना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक भक्ति पढ़ते समय उस सम्बन्धी क्रियाकर्म किस प्रकार सम्पन्न करना चाहिए इसका ऊहापोह करके यहाँ पर प्रत्येक भक्ति और उसकी आलोचनाके विषयमें विचार करना है। यह तो हम आचार्य वसुनन्दिके अभिप्रायानुसार पूर्वमें ही बतला आये हैं कि प्रतिक्रमणमें अपने-अपने क्रियाकर्मके साथ आलोचना भक्ति, प्रतिक्रमण भक्ति, वीर भक्ति और चौबीस

तीर्थङ्कर भक्ति ये चार भक्तियाँ पढ़ी जाती हैं। किन्तु चारित्रसारका अभिप्राय इससे कुछ भिन्न प्रतीत होता है। वहाँ (पृ० ७१-७२) में बतलाया है—

दैवसिकरात्रिकगोचारीप्रतिक्रमणे सिद्धप्रतिक्रमणनिष्ठितकरणचतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तीर्नियमेन कुर्यात् ।......पाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकप्रतिक्रमणे सिद्धचारित्रप्रतिक्रमणनिष्ठितकरणचतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तिचारित्रालोचनागुरुभक्तयो बृहदालोचना गुरुभक्तिर्लघीयसी आचार्यभक्तिश्च करणीया। शेषप्रतिक्रमणे चारित्रालोचनाबृहदालोचनागुरुभक्तिं बिना शेषाः कतव्याः।

दैवसिक, रात्रिक और गोचारी प्रतिक्रमण करते समय सिद्धभक्ति, प्रतिक्रमणनिष्ठितकरणभक्ति और चौबीस तीर्थंकरभक्तिको नियमसे करे।... पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करते समय सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, प्रतिक्रमणनिष्ठितकरणभक्ति, चौबीस तीर्थंकरभक्ति, चारित्रालोचना, गुरुभक्ति, बृहदालोचना, लघु गुरुभक्ति और आचार्यभक्ति करनी चाहिए। शेष प्रतिक्रमणोंको करते समय चारित्रलोचना, बृहदालोचना और गुरुभक्तिके बिना शेष सब भक्तियाँ करनी चाहिए।

प्रतिक्रमणमें चार क्रियाकर्म होते हैं यह निर्देश तो अनगारधर्मामृत (अ० ८ श्लो० ७५) में भी किया है। किन्तु वहाँ वे चार क्रियाकर्म किन भक्तियोंके साथ करने चाहिए इसका स्पष्ट उल्लेख हमारे देखनेमें नहीं आया। इतना अवश्य है कि इसके पूर्व श्लोक ७४ में प्रतिक्रमणके समय वीरभक्ति करनेका विधान पण्डितप्रवर आशाधरजीने भी किया है। यदि चारित्रसारके उक्त उल्लेखको गौण कर देखा जाय तो प्रतिक्रमणके समय चार क्रियाकर्म करने चाहिए यह पुरानी परम्परा रही है ऐसा ज्ञात होता है। साथ ही आचार्य कुन्दकुन्दने नियमसार परमभक्ति नामक अधिकारमें मोक्षभक्ति प्रभृति अनेक भक्तियों का नामोल्लेख किया है तथा वहाँ प्रतिक्रमण आदिके साथ भी भक्तियोंका उल्लेख आया है। इससे प्रतीत होता है कि बहुत प्राचीन कालसे ही वन्दना आवश्यक और प्रतिक्रमण आवश्यक आदि विधि सम्पन्न करते समय अपने-अपने क्रियाकर्मके साथ यथायोग्य भक्तियाँ

अवश्य पढ़ी जाती रही हैं। दिगम्बर परम्परामें प्राकृत और संस्कृत भक्तियोंके पाये जानेका यही कारण है। इतना अवश्य है कि किस समय कौन भक्ति पढ़ी जाय इस प्रकारका उल्लेख आचार्य वसुनन्दिके पूर्व और किसीने किया है यह ज्ञात नहीं होता। इसलिए हमने आचार्य वसुनन्दिके कथनको मुख्य मान कर प्रस्तुत पुस्तकमें प्रतिक्रमण विधिका संकलन किया है। क्रियाकलापमें भी यह विधि लगभग इसी प्रकार उपलब्ध होती है। मात्र आलोचनाभक्ति क्या है इसकी सूचना अभी तक हमें नहीं मिली है। इतना अवश्य है कि क्रियाकलापमें 'आलोयणसिद्धभत्तिकाउस्सग्गं करेमि' इस वचन द्वारा कृत्य विज्ञापन करके उसके कृतिकर्मके साथ सिद्धभक्ति दी गई है, इसलिए हमने भी प्रस्तुत पुस्तकमें उसी क्रमको स्वीकार कर लिया है। इसके साथ यहाँ एक बात मुख्यरूपसे और निर्देश करने योग्य है। वह यह कि प्रतिक्रमणभक्तिमें निषीधिकादण्डक भी सम्मिलित रूपसे उपलब्ध होता है। मुनियोंके लिए जो दैवसिक-रात्रिक प्रतिक्रमणभक्ति पाई जाती है उसके प्रारम्भमें भी यह आया है और श्रावकोंके लिए जो प्रतिक्रमणभक्तिका पाठ पाया जाता है उसके प्रारम्भमें भी यह आया है। इसके पाठके सम्बन्धमें भी बहुत सी बातें विचारणीय हैं। हमारी इच्छानुसार यदि प्राचीन प्रतियाँ उपलब्ध हो जातीं तो उनके आधारसे इन पाठों को तो ठीक किया ही जाता। साथ ही यह भी देखा जाता कि यह प्रतिक्रमणभक्तिका अङ्ग है या क्या बात है। क्रियाकलापका सम्पादन श्रीमान् पं० पन्नालाल जी सोनीने किया है। इसलिए प्रतियोंके सम्बन्धमें हमने उन्हें लिखा था। प्रस्तुत पुस्तकसे सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे महाशयोंको भी लिखा था, पर हमें एक भी प्रति उपलब्ध न हो सकी। इसलिए तत्काल हमने जो स्थिति है उसे वैसा ही रहने दिया है। सब भक्तियोंके अन्तमें आलोचना दण्डक पाया जाता है इसलिए जिस भक्तिके अन्तमें वह जिस रूपमें पाया गया उसे हमने उसी रूपमें रहने दिया है। किन्तु वीरभक्ति और उसके आलोचना दण्डककी स्थिति इससे कुछ भिन्न प्रकारकी है। इस भक्तिमें प्रारम्भमें वीरभक्ति देकर उसमें कुछ चारित्रभक्तिसम्बन्धी श्लोक भी

सम्मिलित कर लिए हैं। इसकी आलोचनाका भी यही हाल है। एक तो यह आलोचना वीरभक्तिसम्बन्धी होगी ऐसा प्रतीत नहीं होता। दूसरे इसके अन्तमें 'आगार पाठ' सम्मिलित पाया जाता है। हमने उस आलोचनामें से 'आगार पाठ' को तो अलग कर दिया है और इसका उपयोग सामायिक दण्डकमें यथास्थान कर लिया है। पर शेष आलोचनाको वैसा ही रहने दिया है। विना आधारके उसका संशोधन करना सम्भव भी नहीं था।

यह तो मूल पाठोंकी बात हुई। इसके सिवा प्रतिक्रमण भक्तिमें जो विशेषता पाई जाती है उसका भी यहाँ पर हम निर्देश कर देना चाहते हैं। बात यह है कि प्रतिक्रमण भक्तिमें चार शिक्षाव्रतोंमें भोगपरिमाणव्रत, उपभोगपरिमाणव्रत, अतिथिसंविभागव्रत और सल्लेखनाव्रत ये चार लिए गये हैं तथा सामायिक शिक्षाव्रतका अन्तर्भाव सामायिक प्रतिमामें और प्रोषधोपवास शिक्षाव्रतका अन्तर्भाव प्रोषधोपवास प्रतिमामें किया गया है। मालूम पड़ता है कि दूसरी प्रतिमाधारी श्रावक सामायिक व्रत और प्रोषध व्रतका प्रतिक्रमण नहीं करता इसी अभिप्रायसे प्रतिक्रमणमें यह क्रम स्वीकार किया गया है। छटी प्रतिमाका नाम तो रात्रिभक्ति प्रतिमा ही रखा है पर उससे अर्थ दिवामैथुनत्यागका ही लिया गया है। मालूम पड़ता है कि रात्रिभक्त अर्थात् रात्रिमें स्त्रीसेवनका नियम इस अभिप्रायको ध्यानमें रख कर यह निर्देश किया गया है। रात्रिभक्तके आगे 'त्याग' शब्द नहीं लगानेका यही आशय प्रतीत होता है। शेष प्रतिमाओंके जो नाम हैं वही अभिप्राय उनसे यहाँ लिया गया है। इस सम्बन्धमें जो विशेष ज्ञातव्य है वह यह कि आरंभ त्याग प्रतिमामें गृहसम्बन्धी आरम्भका, नौवीं प्रतिमामें वस्त्रमात्र परिग्रहको छोड़कर शेष सब परिग्रहका और दसवीं प्रतिमामें अपने गृहकार्यसम्बन्धी सब प्रकारकी अनुमतिका त्याग कराया गया है।

प्रस्तुत पुस्तकमें केवल दैवसिक और रात्रिक प्रतिक्रमण विधिका ही संकलन किया गया है। शेष पाक्षिक आदि प्रतिक्रमणोंकी विधि तो इसी प्रकार है। मात्र जहाँ भक्तियोंकी जो अधिकता आदि है उसे ध्यानमें रख कर उस उस प्रतिक्रमणको सम्पन्न करना चाहिए। चारित्रसारके अनु-

सार पाक्षिक आदि किस प्रतिक्रमण में कौन-कौन भक्तियाँ पढ़ी जाती हैं इसका निर्देश हम पहले कर ही आये हैं। इतना अवश्य ही ध्यानमें रखना चाहिए कि प्रत्येक भक्तिका पाठ अपने-अपने क्रियाकर्मके साथ करनेसे ही उसका पाठ कर्मनिर्जरामें साधक होता है। अतः जो भी प्रतिक्रमण किया जाय वह एक तो स्वयं करना चाहिए। यह नहीं कि कोई एक व्यक्ति पाठका उच्चारण करे और अन्य व्यक्ति उसका अनुसरण मात्र करते जायें, क्योंकि बाह्यालम्बनके विना आत्माधीन होकर किये गये क्रियाकर्मका ही जीवनमें विशेष महत्व है।

आवश्यक निवेदन—

लगभग एक वर्ष पूर्व हम पूज्य श्री **वर्णीजीके** दर्शन करने ईसरी गये थे। उस समय वहाँ श्रीयुत् **पण्डित रतनचन्दजी** मुख्तार और श्रीयुत् **जिनेन्द्रचन्द्रजी** पानीपत भी उपस्थित थे। **जिनेन्द्रचन्द्रजी** भद्रप्रकृतिके सद्गृहस्थ हैं। इनका शरीर अत्यन्त दुर्बल होने पर भी ये नित्य नियमोंके पालन करनेमें अत्यन्त दृढ़ हैं। स्वाध्याय और सत्समागम द्वारा इन्होंने अध्यात्मका अच्छा ज्ञान सम्पादित कर लिया है। उसकी बारीकियों को ये अच्छी तरह समझते हैं और बुद्धि तर्कणाशील होनेसे उसमें गहरी डुबकी लगाते हैं। हमें सुनने का अवसर तो नहीं मिला पर कहते हैं कि इनकी प्रवचनशैली भी मजी हुई है। ये पानीपतके सुप्रसिद्ध समाजसेवी श्री **जयभगवान** जी वकीलके अन्यतम पुत्र हैं। इन्होंने अपनी रुचिके अनुसार श्रावकप्रतिक्रमणविधि संकलित कर रखी थी। कविताबद्ध हिन्दी रूपान्तरके साथ कल्याण आलोचना भी उसमें सम्मिलित थी। श्री युक्त **पं० रतनचन्दजी** मुख्तारने वह हमें दिखलाई और इच्छा प्रगट की कि आप इसे शास्त्रीय दृष्टिसे व्यवस्थित कर दें। तथा इस पर व्यवस्थित भूमिका भी लिख दें। प्रस्तुत पुस्तक उसीका फल है। इसे शास्त्रीय दृष्टिसे व्यवस्थित कर उसके साथ हमने हिन्दी अनुवाद भी लगा दिया है। तथा कल्याणालोचनाको हिन्दीमें नये रूपमें पद्यबन्ध कर दिया है। कल्याणालोचनाके हिन्दी पदोंमें पद्यबन्ध करके उन्हें अन्तिम रूप देते समय हमें इस कार्यमें श्री स्याद्वाद जैन विद्यालयके प्रधान स्नातक

वीनानिवासी चि० **कोमलचन्दसे** पर्याप्त सहायता मिली है। पुस्तकके अन्तमें आचार्य अमितगतिका सामायिक पाठ और उसका बहिन **प्रेमलतादेवी** 'कुमुद' कृत हिन्दी पद्यानुवाद भी दे दिया है। इस प्रकार यह पुस्तक व्रती श्रावकोंके लिए उनमें प्रतिक्रमणविधिकी परिपाटी चलानेके लिये यथासम्भव उपयोगी बनाई गई है।

व्रती श्रावकोंके लिए इस प्रकारकी उपयोगी एक पुस्तक तैयार हो जाय यह मनीषा प्रशममूर्ति **ब्र० पतासीबाईजी**की भी थी। पूज्य माता पतासीबाईका जीवन जितना सात्त्विक है उतना ही वे धर्मानुष्ठान और अतिथि-सत्कारमें भी सावधान रहती हैं। वे अपने व्रतोंका बड़ी दृढ़ताके साथ पालन करती हैं। और सदा ही स्वाध्याय और ध्यानमें दत्तचित्त रहती हैं। अपने बिछुड़े हुए पुत्रका समागम होने पर माताको जो स्नेह होता है वही स्नेह इनमें हमने विद्वानों और त्यागियोंके प्रति देखा और अनुभव किया है। विहार प्रान्तकी स्त्री समाजकी इन्होंने कायापलट ही कर दी है। एक ओर माता **चन्दाबाई जी** और दूसरी ओर माता **पतासीबाई जी** ये दोनों विहार प्रान्तकी अनुपम रत्न हैं। उसमें भी विहार प्रान्तकी स्त्री समाजमें जो धर्मानुराग, धर्मशिक्षा और सदाचार दिखलाई देता है वह सब माता पतासीबाईके पुण्य शिक्षा और आदर्श त्यागमय जीवनका फल है। इनका शास्त्रीय ज्ञान तो बढ़ा चढ़ा है ही, प्रवचनशैली भी तत्त्वस्पर्श करनेवाली हृदयग्राहिणी है। मुखमण्डल हमेशा प्रसन्न और दीप्तिसे ओतप्रोत रहता है। हमारी इच्छा थी कि इनकी संक्षिप्त जीवनी इस पुस्तकके प्रारम्भ दे दी जाय। इसके लिए हमने दो बहिनोंको लिखा भी था, परन्तु उसमें हमें सफलता नहीं मिल सकी। हम आशा करते हैं कि भविष्यमें इसकी पूर्ति अवश्य हो जायगी।

इसके प्रकाशनमें मुख्यरूपसे आर्थिक सहायता देनेवाले **कोडरमा** निवासी श्रीमान् सेठ **भागोलाल** जी पाटनी हैं। ये भी साधु प्रकृतिके सद्‌गृहस्थ हैं और धार्मिक कार्योंमें सहयोग करते रहते हैं।

हमें इस पुस्तकको तैयार करके मुद्रण करानेमें पर्याप्त समय लगा है।

हमें इसकी जानकारी है कि जिन महानुभावोंका इसके निर्माण और प्रकाशनमें हाथ है वे इस देरीके कारण एक प्रकारसे अकुला गये हैं पर हम करें क्या, जो वस्तु अपने स्वाधीन नहीं होती उसमें जल्दी करनेसे लाभ भी कुछ नहीं होता। इस देरीके लिए हम उनसे क्षमा माग लें इसके सिवा हमारे सामने दूसरा कोई मार्ग भी नहीं है। वे विश्वास करें या न करें यह उन्हीं पर निर्भर है पर इतना निश्चित है कि जान बूझकर इस कार्यमें देरी नहीं की गई है। हम तो भादोंके पहले ही इस पुस्तकको तैयार कर चुके थे और भूमिका लिखकर सब मेटर सम्बद्ध महानुभावोंको दिखलाकर प्रेसमें दे चुके थे। इतना अवश्य है कि उक्त भूमिका किसी कारणसे इस पुस्तकमें जोड़नेमें हम असमर्थ रहे। इसलिए प्रस्तुत सम्पादकीय लिखनेके लिए दुवारा परिश्रम करना पड़ा है।

पुस्तक छोटी होने पर भी महत्त्वपूर्ण है। हमें आशा है कि व्रती श्रावक इसके माध्यमसे अपने आचार-व्यवहारमें अवश्य ही संशोधन करेंगे, क्योंकि व्रती बननेके लिए दैनंदिनके जीवनमें यथाशास्त्र अपने क्रियाकर्मके साथ सामायिक आदि षडावश्यक विधिके अनुसार आचार-व्यवहार करना अत्यन्त आवश्यक है। विज्ञेषु किमधिकम्।

१६–२–६०

फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

प्रशममूर्ति पूज्य माता

पतासीबाई जी

वन्दनाकृतिकर्मविधि

दैवसिक और रात्रिक प्रतिक्रमण वन्दनाकृतिकर्मपूर्वक करना चाहिए, इसलिए यहाँ पर संक्षेपमें वन्दनाविधिका निर्देश किया जाता है—

१—व्रती श्रावकको तीनों सन्ध्याकालोंमें नियत समयपर वन्दना-कृतिकर्म करनेका विधान है।

२—वन्दना देव या गुरुके समक्ष की जाती है और उनके अभावमें किसी धर्मग्रन्थ आदिमें उनकी स्थापना कर की जाती है। विधि वही है जो आगे श्रावक प्रतिक्रमण में बतलाई जा रही है। अन्तर केवल इतना है कि श्रावकप्रतिक्रमण में जो भक्तियाँ पढ़ी जाती हैं उनके स्थानमें वन्दनाकृतिकर्ममें ईर्यापथशुद्धि करके तीन प्रदक्षिणा देनेके बाद यथा-विधि सामायिकदण्डक और चतुर्विंशतिस्तव के साथ चैत्यभक्ति और पञ्चगुरुभक्ति पढ़ी जाती है। साथ ही वन्दना करते समय लगे हुए दोषोंका परिशोधन करनेके लिए समाधिभक्ति पढ़नेका भी विधान है। प्रातःकाल और सायंकाल इतनी विधि सम्पन्न करनेके बाद प्रतिक्रमण करना चाहिए।

व्रती श्रावकका इस विधिसे वन्दनाकृतिकर्म करना ही सामायिक है। इसके बाद यदि सामायिकका समय शेष रहे तो वह कायोत्सर्ग आदि कृतिकर्म विशेषरूपसे कर सकता है। उसका निषेध नहीं।

दैवसिक-रात्रिकश्रावकप्रतिक्रमणविधि

पूर्वपीठिका

[पूर्वपीठिका और प्रतिक्रमणपीठिका प्रतिक्रमणमें पढ़नी ही चाहिए यह नियम नहीं है। अनुकूलता हो तो पढ़ ले।]

पापी, दुरात्मा, जड़बुद्धि, मायावी, लोभी और राग-द्वेषसे मलिन चित्तवाले मैंने जो दुष्कर्म किया है; हे तीन लोकके अधिपति! हे जिनेन्द्रदेव! निरन्तर समीचीन मार्ग पर चलनेकी इच्छा करनेवाला मैं आज आपके पादमूलमें निन्दापूर्वक उसका त्याग करता हूं ॥१॥

मैं सब जीवोंको क्षमा करता हूँ। सब जीव मुझे क्षमा करें। मेरा जीवोंमें मैत्रीभाव है, किसीके साथ वैरभाव नहीं है ॥२॥

मैं रागसम्बन्ध, द्वेष, हर्ष, दोषभाव, उत्सुकता, भय, शोक, रति और अरति इन सबका त्याग करता हूँ ॥३॥

हाय! मैंने शरीरसे दुष्ट कार्य किया है, हाय! मैंने मनसे दुष्ट विचार किया है, हाय! मैंने मुखसे दुष्ट वचन बोला है। उसके लिए मैं पश्चात्ताप करता हुआ भीतर ही भीतर जल रहा हूं ॥४॥

निन्दा और गर्हासे युक्त होकर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव पूर्वक किये गये अपराधोंकी शुद्धिके लिए मैं मन, वचन और कायसे प्रतिक्रमण करता हूँ ॥५॥

दैवसिक-रात्रिकश्रावकप्रतिक्रमणविधिः

पूर्वपीठिका

[पूर्वपीठिका प्रतिक्रमणपीठिका च प्रतिक्रमणे पठनीयेति नियमो नास्ति । अनुकूलता स्यात् पठनीया ।]

पापिष्ठेन दुरात्मना जडधिया मायाविना लोभिना
रागद्वेषमलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम् ।
त्रैलोक्याधिपते ! जिनेन्द्र ! भवतः श्रीपादमूलेऽधुना
निन्दापूर्वमहं जहामि सततं वर्वर्तिषुः सत्पथे ॥ १ ॥

खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केण वि ॥ २ ॥

रागबंधं पदोसं च हरिसं दीणभावयं ।
उस्सुगत्तं भयं सोगं रदिमरदिं च वोस्सरे ॥ ३ ॥

हा दुट्ठकयं हा दुट्ठचिंतियं भासियं च हा दुट्ठं ।
अंतो अंतो डज्झमि पच्छुत्तावेण वेदंतो ॥ ४ ॥

दव्वे खेत्ते काले भावे य कदावराहसोहणयं ।
णिंदण-गरहणजुत्तो मणवयकायेण पडिकमणं ॥ ५ ॥

जो एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय तथा पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक जीव हैं; इनका जो उत्तापन, परितापन, विराधन और उपघात किया है, कराया है और करनेवालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होओ।

दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्तत्याग, रात्रिभुक्तित्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग और उद्दिष्टत्याग ये देशविरतके ग्यारह स्थान हैं ॥१॥ इनमेंसे यथास्वीकत प्रतिमाओंमें प्रमाद आदिके निमित्तसे हुए अतीचारोंकी शुद्धिके लिए मेरे छेदोपस्थापना होओ।

अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सब साधुओंकी साक्षीमें मेरे सम्यक्त्वपूर्वक सुव्रत और दृढ़व्रत भले प्रकार समाराधित होवें।

इस प्रकार पूर्वपीठिका समाप्त हुई।

प्रतिक्रमणविधि प्रारम्भ

सिद्धभक्तिकृतिकर्म

अब दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमण करते समय सब प्रकारके अतीचारोंका शोधन करनेके लिए मैं पूर्वाचार्य परिपाटीके अनुसार आलोचना सिद्धभक्तिसम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हूँ।

[यहाँ पञ्चाङ्ग नमस्कारपूर्वक तीन आवर्त और एक प्रणाम करके खड़े-खड़े सामयिकदण्डकका पाठ पढ़े।]

एइंदिया वेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया पुढवि-काइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फदिकाइया तस-काइया एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो समणुमणिदो वा तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

दंसणवयसामाइयपोसहसचित्तराइभत्ते य ।

बंभारंभपरिग्गहअणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदेदे ॥ १ ॥

एयासु जधापडिवण्णपडिमासु पमादाइकयाइचारसोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं ।

अरिहंतसिद्धआयरियउवज्झायसव्वसाहुसक्खियं सम्मत्त-पुव्वगं सुव्वदं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु मे भवदु मे भवदु ।

इति पूर्वपीठिका

अथ प्रतिक्रमणविधिः

सिद्धभक्तिकृतिकर्म

देवसिय (राइय) पडिक्कमणाए सव्वाइचारविसोहिणिमित्तं पुव्वाइरियकमेण आलोयणासिद्धभत्तिकाउस्सग्गं करेमि ।

[अत्र पञ्चांगनमस्कारपूर्वकं आवर्तत्रयं प्रणाममेकं च कृत्वा उद्भी-भूय मुक्ताशुक्तिमुद्रया सामायिकदण्डकं पठेत् ।]

सामायिकदण्डक

अरिहन्तोंको नमस्कार हो, सिद्धोंको नमस्कार हो, आचार्योंको नमस्कार हो, उपाध्यायोंको नमस्कार हो तथा लोकमें सब साधुओंको नमस्कार हो ॥१॥

संसारमें चार मंगल हैं—अरिहन्त मङ्गल हैं, सिद्ध मङ्गल हैं, साधु मङ्गल हैं और केवलिप्रज्ञप्त धर्म मङ्गल है। लोकमें चार उत्तम हैं-अरिहन्त लोकमें उत्तम हैं, सिद्ध लोकमें उत्तम हैं, साधु लोकमें उत्तम हैं और केवलिप्रज्ञप्त धर्म लोकमें उत्तम है। मैं चारकी शरण जाता हूं—अरिहन्तोंकी शरण जाता हूँ, सिद्धोंकी शरण जाता हूँ, साधुओं की शरण जाता हूं और केवलिप्रज्ञप्त धर्मकी शरण जाता हूं।

ढाई द्वीप और दो समुद्रोंके मध्य स्थित पन्द्रह कर्मभूमियोंमें भगवत्स्वरूप, धर्मके आदि कर्ता, तीर्थङ्कर, जिन, जिनोंमें श्रेष्ठ और केवली जितने अरिहन्त हैं; बुद्ध, परम निर्वृत्ति दशाको प्राप्त, संसारका अन्त करनेवाले और संसारसे पारको प्राप्त हुए जितने सिद्ध हैं; जितने धर्माचार्य हैं; जितने धर्मके उपदेशक उपाध्याय हैं तथा जितने धर्मके नायक साधु हैं; ऐसे जो अपने आत्माका कार्य करनेमें समर्थ उत्कृष्ट धर्मके नायक देवाधिदेव पञ्चपरमेष्ठी हैं उनका तथा ज्ञान, दर्शन और चारित्रका मैं सदा कृतिकर्म करता हूं।

हे भगवन ! मैं सामायिकको स्वीकार करता हूं परिणाम स्वरूप मैं सब प्रकारके सावद्ययोगका त्याग करता हूं अपने स्वीकृत कालतक पाप कर्मको मन, वचन और काय इन तीनों योगोंसे मैं न स्वयं करूँगा

सामायिकदण्डकम्

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

चत्तारि मंगलं—अरिहंता मंगलं सिद्धा मंगलं साहू मंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंता लोगुत्तमा सिद्धा लोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पवज्जामि—अरिहंते सरणं पवज्जामि सिद्धे सरणं पवज्जामि केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि ।

अड्ढाइज्जदीव-दोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमीसु जाव अरिहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं सिद्धाणं बुद्धाणं परिणिव्वुदाणं अंतयडाणं पारयडाणं धम्माइरियाणं धम्मदेसियाणं धम्मणायगाणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं देवाहिदेवाणं णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं सदा करेमि किदियम्मं ।

करेमि भंते ! सामाइयं सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा काएण ण करेमि ण कारेमि कीरंतं पि ण समणुमणामि । तस्स भंते ! अइचारं पच्चक्खामि

न दूसरोंसे कराऊँगा और न करते हुएकी अनुमोदना करूँगा। हे भगवन् ! मैं सामायिक व्रतमें लगनेवाले अतीचारका प्रतिक्रमण करता हूं, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ। जब तक मैं अरिहन्त भगवान्की उपासना करता हूं उस काल तक मैं पाप कर्मरूप दुश्चरितका त्याग करता हूं।

मात्र उछ्वास लेना, निःश्वास छोड़ना, पलकें मीचना, पलकें उघाड़ना, खाँसना, छींकना, जंभाई लेना, सूक्ष्म रूपसे अंगोंका संचालन और दृष्टिका संचालन तथा इसी प्रकारके दूसरे सभी समाधिको नहीं प्राप्त हुए आगारोंको छोड़कर मेरा कायोत्सर्ग अविराधित होओ।

[यहाँ पर तीन आवर्त और एक प्रणाम करके जिनमुद्रासे पञ्च नमस्कार मन्त्रका सत्ताईस उच्छ्वासोंमें नौ बार ध्यान करे। अनन्तर पञ्चांग नमस्कार पूर्वक तीन आवर्त और एक प्रणाम करके थोस्सामि दण्डक पढ़े।]

थोस्सामिदण्डक

जो जिनोंमें श्रेष्ठ हैं, केवली हैं, जिन्होंने अनन्त संसारको जीत लिया है, जो मनुष्योंमें उत्कृष्ट जनोंके द्वारा पूजित हैं, जिन्होंने रज-रूपी कर्ममलको नष्टकर दिया है और जो महाप्रज्ञाको प्राप्त हैं ऐसे तीर्थङ्करोंका मैं स्तवन करता हूँ॥ १॥

जो लोकमें धर्मका उद्योत करनेवाले हैं, जो धर्म तीर्थकी स्थापना करनेवाले हैं, जो राग और द्वेषको जीतनेवाले हैं और जो केवल-असहाय अवस्थाको प्राप्त हुए हैं ऐसे चौबीस अरिहन्तोंका मैं कीर्तन करूँगा॥ २॥

णिंदामि गरहामि अप्पाणं। जाव अरिहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि ताव कालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

अण्णत्थ उस्सासिएण वा णिस्सासिएण वा उम्मिसिएण वा णिम्मिसिएण वा खासिएण वा छिंकिएण वा जंभाइएण वा सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं वा दिट्ठिसंचालेहिं वा इच्चेवमाइएहिं सव्वेहिं असमाहिं पत्तेहिं आयारेहिं अविराहिओ होज्ज मे काउस्सग्गो।

[अत्र आवर्तत्रयं प्रणाममेकं च कृत्वा जिनमुद्रामवलम्ब्य सप्तविंशत्युच्छ्वासैः नववारं पञ्चनमस्कारमन्त्रं ध्यायेत्। ततः पञ्चाङ्गनमस्कारपूर्वकं आवर्तत्रयं प्रणाममेकं च कृत्वा त्थोस्सामिदण्डकं पठेत्।]

त्थोस्सामिदंडकम्

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे॥ १॥

लोयस्सुज्जोययरे धम्मंतित्थंकरे जिणे वंदे।
अरिहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो॥ २॥

ऋषभ और अजित जिनकी वन्दना करता हूँ। सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व और चन्द्रप्रभ जिनको नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

सुविधि (पुष्पदन्त), शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म और शान्ति भगवान्‌की वन्दना करता हूँ ॥ ४ ॥

कुन्थु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्व और वर्धमान जिनवरेन्द्रकी वन्दना करता हूँ ॥ ५ ॥

इस प्रकार जिनकी मैंने स्तुति की है, जो कर्मरूपी धूलि तथा मलसे रहित हैं और जो जरा तथा मरणसे सर्वथा मुक्त हैं वे जिनोंमें श्रेष्ठ चौबीस तीर्थङ्कर मुझपर प्रसन्न हों ॥ ६ ॥

जिनका देवों और मनुष्योंने स्तुति की है, वन्दना की है, पूजा की है और जो लोकमें उत्तम हैं वे सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हुए जिनदेव मुझे परिपूर्ण ज्ञान, समाधि और बोधि प्रधान करें ॥ ७ ॥

जो असंख्य चन्द्रोंसे भी अधिक निर्मल हैं, जो असंख्य सूर्योंसे भी अधिक प्रकाशमान हैं और जो सागरके समान अत्यन्त गम्भीर हैं वे तीर्थङ्कर सिद्ध भगवान् मुझे सिद्धि प्रदान करें ॥ ८ ॥

[यहाँपर तीन आवर्त और एक प्रणाम करे। अनन्तर बृहत्सिद्धभक्तिका पाठ पढ़े।]

बृहत्सिद्धभक्ति

जो आठ प्रकारके कर्मोंसे सर्वथा मुक्त हैं, सम्यक्त्व आदि आठ गुणोंसे परिपूर्ण हैं, अनुपम हैं, आठवीं पृथिवीके ऊपर तनुवातवलयमें विराजमान हैं और कृतकृत्य हैं उन सिद्धोंकी हम सर्वदा वन्दना करते हैं ॥ १ ॥

उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥ ३ ॥

सुविहिं च पुप्फयंतं सीयल सेयं च वासुपुज्जं च ।
विमलमणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि ॥ ४ ॥

कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं ।
वंदामि रिट्ठणेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ॥ ५ ॥

एवं मए अभित्थुआ विहुयरयमला पहीणजरमरणा ।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ॥ ६ ॥

कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगुत्तमा जिणा सिद्धा ।
आरोग्गणाणलाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥ ७ ॥

चंदेहिं णिम्मलयरा आइच्चेहिं अहियपयासंता ।
सायरमिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥

[अत्र आवर्तत्रयं प्रणाममेकं च कृत्वा बृहत्सिद्धिभक्तिं पठेत् ।]

बृहत्सिद्धभक्तिः

अट्ठविहकम्ममुक्के अट्ठगुणड्ढे अणोवमे सिद्धे ।
अट्ठमपुढविणिविट्ठे णिट्ठियकज्जे य वंदिमो णिच्चं ।१।

क्षेत्रादिके भेदसे सिद्ध अनेक प्रकारके हैं—तीर्थङ्कर सिद्ध, सामान्य सिद्ध, जलसिद्ध, स्थलसिद्ध, आकाशसिद्ध, अन्तकृत् सिद्ध, इतर सिद्ध, उत्कृष्ट अवगाहना सिद्ध, जघन्य अवगाहना सिद्ध, मध्यम अवगाहना सिद्ध, ऊर्ध्वलोक सिद्ध, अधोलोक सिद्ध, तिर्यग्लोक सिद्ध, सुषमासुषमा आदि छह काल सिद्ध, उपसर्ग सिद्ध, उपसर्गके बिना सिद्ध, द्वीप सिद्ध और समुद्र सिद्ध। इन सब सिद्धोंकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ २–३ ॥

जो दो ज्ञान, तीन ज्ञान या चार ज्ञान, पाँच संयम या चार संयमको पीछे करके सिद्ध हुए हैं, जो संयम, सम्यक्त्व और सम्यग्ज्ञानसे गिर कर या बिना गिरे सिद्ध हुए हैं, जो अपहृत सिद्ध हैं या अनपहृत सिद्ध हैं, जो समुद्घात सिद्ध हैं या बिना समुद्घात के सिद्ध हुए हैं तथा जो कायोत्सर्ग सिद्ध हैं या पर्यङ्कासन सिद्ध हैं ऐसे दोनों प्रकारके मलसे रहित और उत्कृष्ट ज्ञानसे युक्त सब सिद्धोंको मैं वन्दना करता हूँ ॥ ४–५ ॥

जो पुरुषवेदका वेदन करते हुए क्षपकश्रेणी पर आरोहण कर या अन्य वेदों के उदय में क्षपकश्रेणीपर आरोहणकर ध्यानसे उपयुक्त होकर सिद्ध होते हैं। वे कोई प्रत्येकबुद्ध होते हैं, कोई स्वयंबुद्ध होते हैं और कोई बोधितबुद्ध होते हैं। उन सबको पृथक् पृथक् या एक साथ मैं प्रत्येक समयमें प्रणाम करता हूँ ॥ ६–७ ॥

वे सब क्रमसे ज्ञानावरणकी पाँच, दर्शनावरणकी नौ, वेदनीयकी दो, मोहनीयकी अट्ठाईस, आयुकी चार, नामकी तेरानवे, गोत्रकी दो और अन्तरायकी पाँच इस प्रकार बावन कम दो सौ प्रकृतियोंका नाश होनेसे सिद्ध होते हैं ॥ ८ ॥

तित्थयरेदरसिद्धे जलथलआयासणिव्वुदे सिद्धे ।
अंतयडेदरसिद्धे उक्कस्सजहण्णमज्झिमोगाहे ॥२॥
उड्ढमहतिरियलोए छव्विहकाले य णिव्वुदे सिद्धे ।
उवसग्गणिरुवसग्गे दीवोदहिणिव्वुदे य वंदामि ॥ ३ ॥

पच्छायडेय सिद्धे दुग-तिग-चदुणाण-पंच-चदुरजमे ।
परिवडिदापरिवडिदे संजमसम्मत्तणाणमादीहिं ॥ ४ ॥
साहरणासाहरणे सम्मुघादेदरे य णिव्वादे ।
ठिदपलियंकणिसण्णे विगयमले परमणाणगे वंदे ॥ ५ ॥

पुंवेदं वेदंता जे पुरिसा खवगसेढिमारूढा ।
सेसोदयेण वि तहा ज्झाणुवजुत्ता य ते दु सिज्झंति ॥६॥
पत्तेयसयंबुद्धा बोहियबुद्धा य होंति ते सिद्धा ।
पत्तेयं पत्तेयं समये समयं पणिवदामि सदा ॥७॥

पण-णव-दु-अट्ठवीसा चउ-तेणउदी य दोण्णि पंचेव ।
बावण्णहीणवियसयपयडिविणासेण होंति ते सिद्धा ॥८॥

वे सातिशय, अव्याबाध, अनन्त, अनुपम, इन्द्रियोंके अगोचर, आत्मोत्थ और अच्युत सुखको प्राप्त हुए हैं ॥ ९ ॥

वे सिद्ध लोकके अग्र भागमें स्थित हैं, चरम शरीरसे कुछ कम आकारवाले हैं और मैन रहित साँचेके भीतरका जैसा आकार होता है वैसे आकारवाले हैं ॥ १० ॥

जरा, मरण और जन्मसे रहित वे सिद्ध भगवान् उत्तम भक्तिसे युक्त मुझे बुधजनोंके द्वारा प्रार्थना करने योग्य अत्यन्त शुद्ध उत्कृष्ट सम्यग्ज्ञान प्रदान करें ॥ ११ ॥

जो बत्तीस दोषोंसे रहित अतिशुद्ध कायोत्सर्ग करके अतिशय भक्तिसे युक्त होकर उनकी वन्दना करता है वह अतिशीघ्र परम सुखको प्राप्त करता है ॥ १ ॥

[यदि बृहत्सिद्धभक्ति करनेकी अनुकूलता न हो तो लघुसिद्धभक्तिका पाठ पढ़े ।]

लघुसिद्धभक्ति

सिद्धोंके सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघु और अव्याबाध ये आठ गुण होते हैं ॥ १ ॥

तपसिद्ध, नयसिद्ध, संयमसिद्ध, चारित्रसिद्ध, ज्ञानसिद्ध और दर्शन सिद्ध इत्यादिरूपसे जितने सिद्ध हैं उन सबको मैं सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥

[इसके बाद पर्यङ्कासनमें बैठकर मुक्ताशुक्तिमुद्रासे आलोचना पाठ पढ़े]

आलोचनापाठ

हे भगवन् ! मैंने सिद्धभक्ति कायोत्सर्ग किया, उसकी आलोचना करना चाहता हूँ । जो सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रसे

अइसयमव्वाबाहं सोक्खमणंतं अणोवमं परमं ।
इंदियविसयातीदं अप्पुत्थं अच्चुअं च ते पत्ता ॥९॥
लोयग्गमत्थयत्था चरमसरीरेण ते दु किंचूणा ।
गयसित्थमूसगब्भे जारिस आयार तारिसायारा ॥१०॥
जर-मरण-जम्मरहिया ते सिद्धा मम सुभत्तिजुत्तस्स ।
दिंतु वरणाणलाहं बुहयणपरिपत्थणं परमसुद्धं ॥११॥
किच्चा काउस्सग्गं चउरट्ठयदोसविरहियं सुपरिसुद्धं ।
अइभत्तिसंपउतो जो वंदइ लहु लहइ परमसुहं ॥१२॥

[अनुकूलतायां बृहत्सिद्धभक्तिस्थाने लघुसिद्धभक्तिं पठेत् ।]

लघुसिद्धभक्तिः

सम्मत णाण दंसण वीरिय सुहुमं तहेव अवगहणं ।
अगुरुलहुमव्वाबाहं अट्ठ गुणा होंति सिद्धाणं ॥१॥
तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य ।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥२॥

[अत्र पर्यङ्कासनेनोपविश्य मुक्ताशुक्तिमुद्रया आलोचनां पठेत् ।]

आलोचना

इच्छामि भंते ! सिद्धभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं । सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं अट्ठविहकम्मविप्प-

युक्त हैं, आठ प्रकारके कर्मोंसे रहित हैं, आठ गुण सहित हैं, ऊर्ध्व-लोकके अग्रभागमें प्रतिष्ठित हैं, तपसिद्ध हैं, नयसिद्ध हैं, संयमसिद्ध हैं, सम्यग्ज्ञान-सम्यग्दर्शन-सम्यक्चारित्रसिद्ध हैं तथा अतीत, अनागत और वर्तमान इस प्रकार कालत्रयसिद्ध हैं उन सब सिद्धोंकी मैं अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ और वन्दना करता हूँ। मेरे दुक्खोंका क्षय होवे, कर्मोंका क्षय होवे, रत्नत्रयकी प्राप्ति होवे, सुगतिमें गमन होवे, समाधि मरण होवे और जिनदेवके गुणोंकी संप्राप्ति होवे।

प्रतिक्रमणभक्तिपीठिका

हे भगवन्! मैं दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणसम्बन्धी आलोचना करना चाहता हूँ। उस विषयमें—

जो पाँच उदुम्बर फलोंके साथ सात व्यसनोंका त्याग करता है तथा सम्यग्दर्शनसे जिसकी मति निर्मल हो गई है वह दर्शनप्रतिमा-धारी श्रावक कहा गया है॥ १॥

द्वितीय स्थानमें पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत होते हैं ऐसा जानो॥ २॥

जिनवचन, जिनधर्म, जिनचैत्य, पाँच परमेष्ठी और जिनालयकी प्रतिदिन जो त्रिकाल वन्दना की जाती है वह सामायिक है॥ ३॥

उत्तम, मध्यम और जघन्यके भेदसे प्रोषधोपवास तीन प्रकारका कहा गया है। वह प्रत्येक माहके चारों पर्वोंमें अपनी शक्तिके अनुसार करना चाहिए॥ ४॥

मुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं तवसिद्धाणं णयसिद्धाणं संजमसिद्धाणं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तसिद्धाणं अदीदाणागदवट्टमाणकालत्तयसिद्धाणं सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं अच्चेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि। दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं।

प्रतिक्रमणभक्तिपीठिका

इच्छामि भंते ! देवसियं (राइयं) आलोचेउं। तत्थ—

पंचुंबरसहियाइं सत्त वि वसणाइं जो विवज्जेइ।
सम्मत्तविसुद्धमई सो दंसणसावओ भणियो ॥१॥

पंच य अणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि।
सिक्खावयाइं चत्तारि जाण विदियम्मि ठाणम्मि ॥२॥

जिणवयणधम्मचेइयपरमेट्ठिजिणालयाण णिच्चं पि।
जं वंदणं तियालं कीरइ सामाइयं तं खु ॥३॥

उत्तम-मज्झम-जहण्णं तिविहं पोसहविहाणमुद्दिट्ठं।
सगसत्तीए मासम्मि चउसु पव्वेसु कायव्वं ॥४॥

हरित छाल, पत्ता, प्रवाल, कन्द, फल और बीज तथा अप्रासुक जलका जो वर्जन किया जाता है वह सचित्तनिवृत्ति नामका पाँचवाँ स्थान है ॥ ५ ॥

मन, वचन और काय तथा कृत, कारित और अनुमोदनासे जो दिनमें मैथुनका वर्जन करता है वह छटे गुणका धारण करनेवाला श्रावक है ॥ ६ ॥

जो पूर्वोक्त नौ प्रकारके मैथुनका सदाके लिए त्याग करता है और स्त्रीकथा आदिसे निवृत्त होता है वह सातवें गुण ब्रह्मचर्यका धारण करनेवाला श्रावक है ॥ ७ ॥

आरम्भसे निवृत्तबुद्धि जो बहुत और थोड़े गृहसम्बन्धी आरम्भका सदाके लिए त्याग करता है, वह श्रावक आठवें गुणका धारण करनेवाला कहलाता है ॥ ८ ॥

जो वस्त्रमात्र परिग्रहको छोड़कर और शेष परिग्रहका त्याग कर उसमें मूर्च्छा नहीं करता उसे नौवाँ श्रावक जानो ॥ ९ ॥

अपने गृहसम्बन्धी कार्यमें जो अपने कुटुम्बियोंके द्वारा और अन्य पुरुषोंके द्वारा नहीं पूँछे जाने पर तो अनुमति देता ही नहीं, पूँछे जाने पर भी अनुमति नहीं देता उसे दसवां श्रावक जानो ॥ १० ॥

जो भिक्षावृत्तिसे याचनासे रहित नौ कोटि परिशुद्ध योग्य भोजन करता है वह ग्यारहवां श्रावक है ॥ ११ ॥

ग्यारहवें स्थानमें उत्कृष्ट श्रावक दो प्रकारका है। एक खण्डवस्त्रको धारण करनेवाला प्रथम श्रावक है और कौपीनमात्र परिग्रहवाला दूसरा श्रावक है ॥ १२ ॥

जं वज्जयदि हरिदं तयपत्तपवालकंदफलवीयं ।
अप्पासुगं च सलिलं सच्चित्तणिवत्तिगं ठाणं ॥६॥

मणवयणकायकदकारिदाणुमोदेहिं मेहुणं णवधा ।
दिवसम्मि जो विवज्जदि गुणम्मि सो सावओ छट्ठो ॥५॥

पुवुत्तणवविहाणं पि मेहुणं सव्वदा विवज्जंतो ।
इत्थिकहादिणिवित्ती सत्तमगुणबंभचारी सो ॥७॥

जं किं पि गिहारंभं बहु थोवं वा सया विवज्जेदि ।
आरंभणिवित्तमदी सो अट्ठमसावओ भणिओ ॥ ८ ॥

मोत्तूण वत्थमित्तपरिग्गहं जो विवज्जदे सेसं ।
तत्थ वि मुच्छं ण कुणदि वियाण सो सावओ णवमो ॥९॥

पुट्ठो वापुट्ठो वा णियगेहिं परेहिं सग्गिहकज्जे ।
अणुमणणं जो ण कुणदि वियाण सो सावओ दसमो ॥१०॥

णवकोडीसु विसुद्धं भिक्खायरणेण भुंजदे भुज्जं ।
जायणरहियं जोग्गं एयारस सावओ सो दु ॥११॥

एयारसम्मि ठाणे उक्किट्ठो सावओ हवे दुविहो ।
वत्थेयधरो पढमो कोवीणपरिग्गहो विदिओ ॥१२॥

यह तप, व्रत, नियम, आवश्यक और लोच करता है, पीछी ग्रहण करता है, अनुप्रेक्षाओंका चिन्तवन और धर्मध्यान करता है तथा एक स्थान पर हाथको पात्र बनाकर उसमें भोजन लेता है ॥ १३ ॥

इस विषयमें मैंने जो दैवसिक (रात्रिक) अतीचार और अनाचार किया है उसका हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। प्रतिक्रमण करने-वाले मेरा सम्यक्त्वमरण हो, समाधिमरण हो, पण्डितमरण हो, वीर्यमरण हो, दुःखोंका क्षय हो, कर्मोंका क्षय हो, रत्नत्रयका लाभ हो, सुगतिमें गमन हो, समाधिमरण हो और जिनेन्द्रदेवके गुणोंकी सम्प्राप्ति हो।

दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्तविरत, रात्रिभोजनविरत, ब्रह्मचर्य, आरम्भत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग और उद्दिष्टत्याग ये देशविरतके ग्यारह स्थान हैं।

इन यथाकथित प्रतिमाओंमें प्रमाद आदिके निमित्तसे हुए अती-चारोंका शोधन करनेके लिए मेरे छेदोपस्थापना होवे।

प्रतिक्रमणभक्तिकृतिकर्म

अब दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणमें सब अतीचारोंका शोधन करनेके लिए पूर्वाचार्यपरिपाटीके अनुसार निषीधिका-प्रतिक्रमणभक्ति-कायोत्सर्ग करता हूँ।

[अत्र पञ्चाङ्गनमस्कार पूर्वकं आवर्तत्रयं प्रणाममेकं च कृत्वा उत्थीभूय मुक्ताशुक्तिमुद्रया सामायिकदण्डकं पठेत्।]

सामायिकदण्डक

अरिहन्तोंको नमस्कार हो, सिद्धोंको नमस्कार हो, आचार्योंको नमस्कार हो, उपाध्यायोंको नमस्कार हो तथा लोकमें सब साधुओंको नमस्कार हो ॥१॥

तव-वय-णियमावस्सय-लोयं करेदि पिच्छं गिण्हेदि ।
अणुवेहा-धम्मज्झाणं करपत्ते एयठाणम्मि ॥१३॥

एत्थ मे जो कोइ देवसिओ (राइओ) अइचरो अणाचारो कओ तस्स भंते ! पडिक्कमामि। पडिक्कम्मंतस्स मे सम्मत्तमरणं समाहिमरणं पंडियमरणं वीरियमरणं दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं।

दंसण-वय-सामाइय-पोसह-सच्चित्त-रायभत्ते य।
बंभारंभ-परिग्गह-अणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदेदे ॥१॥

एयासु जहाकहिदपडिमासु पमादाइकयाइचारसोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं ।

प्रतिक्रमणभक्तिकृतिकर्म

अथ देवसिय (राइय) पडिक्कमणे सव्वाइचारसोहणट्ठं पुव्वाइरियाकमेण णिसीहियापडिक्कमणभत्तिकाउसग्गं करेमि ।

[यहाँपर पञ्चाङ्ग नमस्कार पूर्वक तीन आवर्त्त और एक प्रणाम करके खड़े-खड़े सामयिकदण्डकका पाठ पढ़े ।]

सामायिकदण्डकम्

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

संसारमें चार मंगल हैं—अरिहन्त मङ्गल हैं, सिद्ध मङ्गल हैं, साधु मङ्गल हैं और केवलिप्रज्ञप्त धर्म मङ्गल है। लोकमें चार उत्तम हैं–अरिहन्त लोकमें उत्तम हैं, सिद्ध लोकमें उत्ताम हैं, साधु लोकमें उत्तम हैं और केवलिप्रज्ञप्त धर्म लोकमें उत्ताम है। मैं चारकी शरण जाता हूं—अरिहन्तोंकी शरण जाता हूँ, सिद्धोंको शरण जाता हूँ, साधुओं की शरण जाता हूं और केवलिप्रज्ञप्त धर्मकी शरण जाता हूं।

ढाई द्वीप और दो समुद्रोंके मध्य स्थित पन्द्रह कर्मभूमियोंमें भगवत्स्वरूप, धर्मके आदि कर्ता, तीर्थङ्कर, जिन, जिनोंमें श्रेष्ठ और केवली जितने अरिहन्त हैं; बुद्ध, परम निवृत्ति दशाको प्राप्त, संसारका अन्त करनेवाले और संसारसे पारको प्राप्त हुए जितने सिद्ध हैं; जितने धर्माचार्य हैं; जितने धर्मके उपदेशक उपाध्याय हैं तथा जितने धर्मके नायक साधु हैं; ऐसे जो अपने आत्माका कार्य करनेमें समथ उत्कृष्ट धर्मके नायक देवाधिदेव पञ्चपरमेष्ठी हैं उनका तथा ज्ञान, दर्शन और चारित्रका मैं सदा कृतिकर्म करता हूं।

हे भगवन्! मैं सामायिकको स्वीकार करता हूं। परिणाम स्वरूप मैं सब प्रकारके सावद्ययोगका त्याग करता हूं। अपने स्वीकृत कालतक पाप कर्मको मन, वचन और काय इन तीनों योगोंसे मैं न स्वयं करूँगा न दूसरोंसे कराऊँगा और न करते हुएकी अनुमोदना करूँगा। हे भगवन्! मैं सामायिक व्रतमें लगनेवाले अतीचारका प्रतिक्रमण करता हूं, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ। जब तक मैं अरिहन्त भगवान्की उपासना करता हूं उस काल तक मैं पाप कर्मरूप दुश्चरितका त्याग करता हूं।

चत्तारि मंगलं—अरिहंता मंगलं सिद्धा मंगलं साहू मंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंता लोगुत्तमा सिद्धा लोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पवज्जामि—अरिहंते सरणं पवज्जामि सिद्धे सरणं पवज्जामि साहू सरणं पवज्जामि केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।

अड्ढाइज्जदीव-दोसमुद्दे सु पण्णारसकम्मभूमीसु जाव अरिहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं सिद्धाणं बुद्धाणं परिणिव्वुदाणं अंतयडाणं पारयडाणं धम्माइरियाणं धम्मदेसियाणं धम्मणायगाणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं देवाहिदेवाणं णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं सदा करेमि किदियम्मं।

करेमि भंते! सामाइयं सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि जावणियमं तिविहेण मणसा वचसा काएण ण करेमि ण कारेमि कीरंतं पि ण समणुमणामि। तस्स भंते! अइचारं पच्चक्खामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं। जाव अरिहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि ताव कालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

मात्र उच्छ्वास लेना, निःश्वास छोड़ना, पलकें मीचना, पलकें उघाड़ना, खाँसना, छींकना, जंभाई लेना, सूक्ष्म रूपसे अंगोंका संचालन और दृष्टिका संचालन तथा इसी प्रकारके दूसरे सभी समाधिको नहीं प्राप्त हुए आगारोंको छोड़कर मेरा कायोत्सर्ग अविराधित होओ।

[यहाँ पर तीन आवर्त और एक प्रणाम करके जिनमुद्रासे पञ्च नमस्कार मन्त्रका सत्ताईस उच्छ्वासोंमें नौ बार ध्यान करे। अनन्तर पञ्चांग नमस्कार पूर्वक तीन आवर्त और एक प्रणाम करके थोस्सामि दण्डक पढ़े।]

थोस्सामिदण्डक

जो जिनोंमें श्रेष्ठ हैं, केवली हैं, जिन्होंने अनन्त संसारको जीत लिया है, जो मनुष्योंमें उत्कृष्ट जनोंके द्वारा पूजित हैं, जिन्होंने रज-रूपी कर्ममलको नष्ट कर दिया है और जो महाप्रज्ञाको प्राप्त हैं ऐसे तीर्थङ्करोंका मैं स्तवन करता हूँ॥ १॥

जो लोकमें धर्मका उद्योत करनेवाले हैं, जो धर्मतीर्थकी स्थापना करनेवाले हैं, जो राग और द्वेषको जीतनेवाले हैं और जो केवल-असहाय अवस्थाको प्राप्त हुए हैं ऐसे चौबीस अरिहन्तोंका मैं कीर्तन करूँगा॥ २॥

ऋषभ और अजित जिनकी वन्दना करता हूँ। सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व और चन्द्रप्रभ जिनको नमस्कार करता हूँ॥ ३॥

सुविधि (पुष्पदन्त), शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म और शान्ति भगवान्की वन्दना करता हूँ॥ ४॥

अएणत्थ उस्सासिएण वा णिस्सासिएण वा उम्मिसिएण वा णिम्मिसिएण वा खासिएण वा छिंकिएण वा जंभाइएण वा सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं वा दिट्ठिसंचालेहिं वा इच्चेवमाइएहिं सव्वेहिं असमाहिं पत्तेहिं आयारेहिं अविराहिओ होज्ज मे काउस्सग्गो ।

[अत्र आवर्तत्रयं प्रणाममेकं च कृत्वा जिनमुद्रामवलम्ब्य सप्तविंशत्युच्छ्वासैः नववारं पञ्चनमस्कारमन्त्रं ध्यायेत् । ततः पञ्चाङ्गनमस्कारपूर्वकं आवर्तत्रयं प्रणाममेकं च कृत्वा त्थोस्सामिदण्डकं पठेत् ।]

त्थोस्सामिदंडकम्

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंतजिणे ।
णरपवरलोयमहिए विहुयरयमले महप्पएणे ॥ १ ॥

लोयस्सुज्जोययरे धम्मंतित्थंकरे जिणे वंदे ।
अरिहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो ॥ २ ॥

उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥ ३ ॥

सुविहिं च पुप्फयंतं सीयल सेयं च वासुपुज्जं च ।
विमलमणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि ॥ ४ ॥

कुन्थु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्व और वर्धमान जिनवरेन्द्रकी वन्दना करता हूँ ॥ ५ ॥

इस प्रकार जिनकी मैंने स्तुति की है, जो कर्मरूपी धूलि तथा मलसे रहित हैं और जो जरा तथा मरणसे सर्वथा मुक्त हैं वे जिनोंमें श्रेष्ठ चौबीस तीर्थङ्कर मुझपर प्रसन्न हों ॥ ६ ॥

जिनको देवों और मनुष्योंने स्तुति की है, वन्दना की है, पूजा की है और जो लोकमें उत्तम हैं वे सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हुए जिनदेव मुझे परिपूर्ण ज्ञान, समाधि और बोधि प्रदान करें ॥ ७ ॥

जो असंख्य चन्द्रोंसे भी अधिक निर्मल हैं, जो असंख्य सूर्योंसे भी अधिक प्रकाशमान हैं और जो सागरके समान अत्यन्त गम्भीर हैं वे तीर्थङ्कर सिद्ध भगवान् मुझे सिद्धि प्रदान करें ॥ ८ ॥

[यहाँपर तीन आवर्त और एक प्रणाम करे । अनन्तर निषीधिकादण्डकका पाठ पढ़े ।]

निषीधिकादण्डक

अरिहन्तोंको नमस्कार हो, सिद्धोंको नमस्कार हो, आचार्योंको नमस्कार हो, उपाध्यायोंको नमस्कार हो और लोकमें सब साधुओंको नमस्कार हो ॥ १ ॥

जिनोंको बार-बार नमस्कार हो, निषीधिकाको बार-बार नमस्कार हो, आपको बार-बार नमस्कार हो । हे अरिहन्त ! हे सिद्ध ! हे बुद्ध ! हे नीरज ! हे निर्मल ! हे सममन ! हे शुभमन ! हे सुसमर्थ ! हे समयोग ! हे समभाव ! हे शल्योंको पीस देनेवाले ! हे शल्योंको काट देनेवाले ! हे

कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं ।
वंदामि रिट्ठणेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ॥ ५ ॥

एवं मए अभित्थुआ विहुयरयमला पहीणजरमरणा ।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ॥ ६ ॥

कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगुत्तमा जिणा सिद्धा ।
आरोग्गणाणलाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥ ७ ॥

चंदेहिं णिम्मलयरा आइच्चेहिं अहियपयासंता ।
सायरमिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥

[अत्र आवर्तत्रयं प्रणाममेकं च कृत्वा निषीधिकादण्डकं पठेत् ।]

निषीधिकादण्डकम्

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

णमो जिणाणं ३, णमो णिसीहीए ३, णमो त्थु दे ३ । अरिहंत ! सिद्ध ! बुद्ध ! णीरय ! णिम्मल ! सममण ! सुभमण ! सुसमत्थ ! समजोग ! समभाव ! सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताण !

निर्भय ! हे रागरहित ! हे निर्दोष ! हे निर्मोह ! हे ममता रहित ! हे सङ्गरहित ! हे निःशल्य ! हे मान, माया और मृषाका त्याग करने वाले ! हे तपकी प्रभावना करनेवाले ! हे गुणरत्नशीलसागर ! हे अनन्त ! हे अप्रमेय ! हे महति महावीर वर्धमान बुद्धिऋषि ! आपको नमस्कार हो, आपको नमस्कार हो, आपको नमस्कार हो।

लोकमें जो अरिहन्त हैं, सिद्ध हैं, बुद्ध हैं, जिन हैं, केवली हैं, अवधिज्ञानी हैं, मनःपर्ययज्ञानी हैं, चौदह पूर्वज्ञानी हैं, श्रुत और समितियोंसे समृद्ध हैं, बारह प्रकारका तप है, तपस्वी हैं, गुण हैं, गुणवाले महाऋषि हैं, तीर्थ है, तीर्थङ्कर हैं, प्रवचन है, प्रवचनी हैं, ज्ञान है, ज्ञानी हैं, दर्शन है, दर्शनी हैं, संयम है, संयत हैं, विनय है, विनयवान् हैं, ब्रह्मचर्यवास है, ब्रह्मचारी हैं, गुप्तियाँ हैं, गुप्तियोंके धारक हैं, मुक्ति है, मुक्तिप्राप्त हैं, समितियाँ हैं, समितियोंके धारक हैं, स्वसमय और परसमयके ज्ञाता हैं, क्षान्तिक्षपक हैं, क्षान्तिके धारक हैं, क्षीणमोह हैं, कर्मोंका क्षय करनेवाले हैं, बोधितबुद्ध हैं, बुद्धि ऋद्धिके धारक हैं, चैत्यवृक्ष हैं, चैत्य हैं वे सब मेरा मङ्गल करें।

ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोकमें सिद्धायतनोंको मैं नमस्कार करता हूं, अष्टापद पर्वत, सम्मेदाचल, ऊर्जयन्त, चम्पानगरी और मध्यमा पावामें हस्तिपालकी सभा नामके क्षेत्रमें स्थित सिद्ध निषीधिकाओंको तथा जीव लोकमें जो कोई अन्य निषीधिकाएँ हैं उन सबको मैं नमस्कार करता हूँ तथा ईषत्प्राग्भार पृथिवीके ऊपर तनुवातवलयमें स्थित कर्मचक्रसे रहित, नीरज और निर्मल सिद्ध-बुद्धोंको, गुरु,

णिब्भय ! णीराय ! णिद्दोस ! णिम्मोह ! णिम्मम ! णिस्संग ! णिस्सल्ल ! माण-माय-मोसमूरण ! तवप्पहावण ! गुणरयण-सीलसायर ! अणंत ! अप्पमेय ! महदिमहावीरवड्ढमाणबुद्धरिसिणो चेदि णमोत्थु दे णमोत्थु दे णमोत्थु दे ।

मम मंगलं अरिहंता य सिद्धा य बुद्धा य जिणा य केवलिणो य ओहिणाणिणो य मणपज्जवणाणिणो य चउदसपुव्वगामिणो य सुदसमिदिसमिद्धा य तवो य बारसविहो तवस्सी य गुणा य गुणवंतो य महारिसी तित्थं तित्थंकरा य पवयणं पवयणी य णाणं णाणी य दंसणं दंसणी य संजमो संजदा य विणओ विणदा य बंभचेरवासो बंभचारी य गुत्तीओ चेव गुत्तिमंतो य मुत्तीओ चेव मुत्तिमंतो य समिदीओ चेव समिदिमंतो य ससमय-परसमयविदू खंतिक्खवगा य खंतिवंतो य खीणमोहा य खीणवंतो य बोहियबुद्धा य बुद्धिमंतो य चेइयरुक्खा य चेइयाणि य ।

उड्ढमहतिरियलोए सिद्धायदणाणि णमंसामि सिद्धणिसिहियाओ अट्ठावयपव्वए सम्मेदे उज्जंते चंपाए पावाए मज्झिमाए हत्थिवालियसहाए जाओ अण्णाओ काओ वि णिसीहियाओ जीवलोयम्मि ईसिपब्भारतलग्गयाणं सिद्धाणं बुद्धाणं कम्मचक्क-

आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर और कुलकरोंको मैं नमस्कार करता हूँ। भरत और ऐरावत सम्बन्धी दस क्षेत्रोंमें और पाँच महाविदेहोंमें जो चातुर्वर्ण श्रमण संघ है तथा लोकमें जो साधु, संयत और तपस्वी हैं वे मेरे लिए पवित्र मंगलकारी होवें। भावसे तथा मन, वचन और कायसे त्रिकरण शुद्ध हुआ मैं मस्तक पर हाथ जोड़े हुए सिद्धोंको वन्दना करके इन सबका मङ्गल पाठ करता हूं।

प्रतिक्रमणभक्तिदण्डक

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। दर्शनप्रतिमामें शंकासे, कांक्षासे, विचिकित्सासे, पर पाखण्डियोंकी प्रशंसासे और पर पाखंडियोंकी स्तुतिसे जो मैंने दैवसिक (रात्रिक) अतीचार मनसे, वचन से और कायसे किया है, कराया है और करनेवालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूं। व्रतप्रतिमासम्बन्धी प्रथम स्थूलव्रतमें वधसे, बन्धनसे, छेदनेसे, अतिभारके लादनेसे और अन्नपानका निरोध करनेसे जो मैंने दैवसिक (रात्रिक) अतीचार मनसे, वचनसे और कायसे किया है, कराया है और करनेवालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूं। व्रतप्रतिमासम्बन्धी दूसरे स्थूलव्रतमें मिथ्या उपदेशसे, किसीकी एकान्तकी बात प्रकट करनेसे, कूट लेख लिखनेसे, धरोहरका अपहरण करनेसे और चेष्टाद्वारा किसीकी गुप्त बात जानकर उसका भेद खोल देनेसे जो मैंने दैवसिक (रात्रिक)

मुक्काणं धीरयाणं णिम्मलाणं गुरु-आइरिय-उवज्झायाणं पवत्ति-त्थेर-कुलयराणं चाउवण्णो य समणसंघो य भरहेरावएसु दससु पंचसु महाविदेहेसु जे लोए संति साहवो संजदा तवस्सी एदे मम मंगलं पवित्तं एदे हं मंगलं करेमि भावदो विसुद्धो सिरसा अहि-वंदिऊण सिद्धे काऊण अंजलिं मत्थयम्मि तिविहं तिरयणसुद्धो।

प्रतिक्रमणभक्तिदण्डकम्

पडिक्कमामि भंते ! दंसणपडिमाए संकाए कंखाए विदिगिं-छाए परपासंडाण पसंसाए पसंथुईए जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा वचसा काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो वा तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पडिक्कमामि भंते ! वदपडिमाए पढमे थूलयडे वहेण वा बंधेण वा छेएण वा अइभारारोहणेण वा अण्ण-पाणणिरोहेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा वचसा काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो वा तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पडिकमामि भंते ! वदपडिमाए विदिए थूलयडे मिच्छोव-देसेण वा रहोअब्भक्खाणेण वा कूडलेहणकरणेण वा णासावहारेण वा सायारमंतभेएण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो

अतीचार मनसे, वचनसे और कायसे किया है, कराया है और करने-वालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। व्रतप्रतिमा सम्बन्धी तीसरे स्थूलव्रतमें चोरको प्रेरित करनेसे, चोर द्वारा लाये गये द्रव्यको ग्रहण करनेसे, राज्यमें विरोध होनेपर मर्यादाका उल्लंघन करनेसे, नाप-तौलके हीनाधिक बाँट रखनेसे और मिलावटका व्यवहार करनेसे जो दैवसिक (रात्रिक) अतीचार मनसे, वचनसे और कायसे मैंने किया है, कराया है और करनेवालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। व्रतप्रतिमासम्बन्धी चौथे स्थूलव्रतमें दूसरेका विवाह करनेसे, इत्वरिकागमनसे, परिग्रहीता-अपरिग्रहीतागमनसे, अनङ्गक्रीड़ासे और कामविषयक तीव्र अभिलाषा होनेसे जो मैंने दैवसिक (रात्रिक) अतीचार मनसे, वचनसे और कायसे किया है, कराया है और करनेवालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूं। व्रतप्रतिमासम्बन्धी पांचवें स्थूलव्रतमें क्षेत्र और वास्तुके परिमाणका उल्लंघन करनेसे, धन-धान्यके परिमाणका उल्लंघन करनेसे, दासी-दासके परिमाणका उल्लंघन करनेसे, हिरण्य-सुवर्णके परिमाणका उल्लंघन करनेसे और कुप्य-भाण्डके परिमाणका उल्लंघन करनेसे जो मैंने दैवसिक (रात्रिक) अतीचार मनसे, वचनसे और कायसे किया है, कराया है और करनेवालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

मणसा वचसा काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणु-मणिदो वा तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए तदिए थूलयडे थेणपओगेण वा थेणहरियादाणेण वा विरुद्धरज्जाइक्कमेण वा हीणाहिय-माणुम्माणेण वा पडिरूवयववहारेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा वचसा काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो वा तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए चउत्थे थूलयडे परविवाह-करणेण वा इत्तरियागमणेण वा परिग्गहिदापरिग्गहिदागमणेण वा अणंगक्रीडणेण वा कामतिव्वाभिणिवेसेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा वचसा काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो वा तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए पंचमे थूलयडे खेत्त-वत्थूणं परिमाणाइक्कमेण वा धण-धण्णाणं परिमाणाइक्कमेण वा दासी-दासाणं परिमाणाइक्कमेण वा हिरण्ण-सुवण्णाणं परिमाणाइक्क-मेण वा कुप्प-भांडाणं परिमाणाइक्कमेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा वचसा काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो वा तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। व्रतप्रतिमा सम्बन्धी पहिले गुणव्रतमें ऊर्ध्व दिशामें की गई मर्यादाका उल्लंघन करनेसे, अधो दिशामें की गई मर्यादाका उल्लंघन करनेसे, तिर्यग्दिशामें की गई मर्यादाका-उल्लंघन करनेसे, क्षेत्रमें वृद्धि कर लेनेसे और मर्यादाका स्मरण न रहनेसे जो मैंने दैवसिक (रात्रिक) अतीचार मनसे, वचन से और कायसे किया है, कराया है और करनेवालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। व्रतप्रतिमा सम्बन्धी दूसरे गुणव्रतमें मर्यादाके बाहरसे वस्तुके बुलानेसे, मर्यादाके बाहर वस्तुको ले जानेके लिए किसीको प्रयुक्त करनेसे, शब्द बोलनेसे, आकार दिखानेसे और पुद्गल कंकड़ आदि फेंकनेसे जो मैंने दैवसिक (रात्रिक) अतीचार मनसे, वचनसे और कायसे किया है, कराया है और करने वालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूं। व्रतप्रतिमासम्बन्धी तीसरे गुणव्रतमें कन्दर्पसे, कौत्कुच्यसे, मौखर्यसे, बिना विचार किये अधिक कार्य करनेसे और भोगोपभोगको सामग्रीको बरबाद करनेसे जो मैंने दैवसिक (रात्रिक) अतीचार मनसे, वचनसे और कायसे किया है, कराया है और करनेवालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। व्रत प्रतिमा सम्बन्धी प्रथम शिक्षाव्रतमें स्पर्शन इन्द्रियसम्बन्धी भोगके परिमाणका उल्लंघन करनेसे रसना इन्द्रियसम्बन्धी भोगके परिमाणका उल्लंघन करनेसे, घ्राण

पडिक्कमामि भंते ! वदपडिमाए पढमे गुणव्वदे उड्ढवइ-क्कमणेण वा अहोवइक्कमणेण वा तिरियवइक्कमणेण वा खेत्त-वुड्ढीए वा सदिअंतराधाणेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा वचसा काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पडिक्कमामि भंते ! वदपडिमाए विदिए गुणव्वदे आणय-णेण वा विणिजोगेण वा सद्दाणुवाएण वा रूवाणुवाएण वा पुग्गलक्खेवेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा वचसा काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पडिक्कमामि भंते ! वदपडिमाए तदिए गुणव्वदे कंदप्पेण वा कुक्कुचियेण वा मोक्खरिएण वा असमीक्खियाहिकरणेण वा भोगोवभोगाणत्थकरणेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा वचसा काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पडिक्कमामि भंते वदपडिमाए पढमे सिक्खावदे फासिंदिय-भोगपरिमाणाइक्कमणेण वा रसणिंदियभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा

इन्द्रियसम्बन्धी भोगके परिमाणका उल्लंघन करनेसे, चक्षु इन्द्रिय सम्बन्धी भोगके परिमाणका उल्लंघन करनेसे और श्रोत्र इन्द्रिय सम्बन्धी भोगके परिमाणका उल्लंघन करनेसे जो मैंने दैवसिक (रात्रिक) अतीचार मनसे, वचनसे और कायसे किया है, कराया है और करनेवालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। व्रतप्रतिमासम्बन्धी दूसरे शिक्षाव्रतमें स्पर्शन इन्द्रियसम्बन्धी उपभोगके परिमाणका उल्लंघन करनेसे, रसना इन्द्रियसम्बन्धी उपभोगके परिमाणका उल्लंघन करनेसे, घ्राण इन्द्रियसम्बन्धी उपभोगके परिमाणका उल्लंघन करनेसे, चक्षु इन्द्रियसम्बन्धी उपभोगके परिमाणका उल्लंघन करनेसे और श्रोत्र इन्द्रियसम्बन्धी उपभोगके परिमाणका उल्लंघन करनेसे जो मैंने दैव-सिक (रात्रिक) अतीचार मनसे, वचनसे और कायसे किया है, कराया है और करनेवालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। व्रत प्रतिमासम्बन्धी तीसरे शिक्षाव्रतमें सचित्त पर रखनेसे, सचित्तके द्वारा ढकनेसे, परके व्यपदेशसे, कालका उल्लंघन करनेसे और मात्सर्यसे जो मैंने दैवसिक (रात्रिक) अतीचार मनसे, वचनसे और कायसे किया है, कराया है और करनेवालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। व्रत प्रतिमासम्बन्धी चौथे शिक्षाव्रतमें जीनेकी इच्छा करनेसे, मरनेकी इच्छा करनेसे, मित्रोंमें अनुराग होनेसे, सुखोंका बार-बार स्मरण होनेसे और आगामी भोगोंकी

घाणिंदियभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा चक्खिंदियभोगपरिमाणा-इक्कमणेण वा सवणिंदियभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा वचसा काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पडिक्कमामि भंते ! वदपडिमाए विदिए सिक्खावदे फासिं-दियपरिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा रसणिंदियपरिभोगपरिमाणा-इक्कमणेण वा घाणिंदियपरिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा चक्खि-दियपरिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा सवणिंदियपरिभोगपरिमाणा-इक्कमणेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा वचसा काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पडिक्कमामि भंते ! वदपडिमाए तदिए सिक्खावदे सचित्त-णिक्खेवेण वा सचित्तपिहाणेण वा परववएसेण वा कालाइक्क-मणेण वा मच्छरिएण वा जा मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा वचसा काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पडिक्कमामि भंते ! वदपडिमाए चउत्थे सिक्खावदे जीवि-दासंसणेण वा मरणासंसणेण वा मित्ताणुराएण वा सुहाणुबंधेण वा णिदाणेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा

बांछा होनेसे जो मैंने दैवसिक (रात्रिक) अतीचार मनसे, वचनसे और कायसे किया है, कराया है और करनेवालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूं। सामायिक प्रतिमामें मन-दुष्प्रणिधानसे, वचनदुष्प्रणिधानसे, कायदुष्प्रणिधानसे, सामायिकमें अनादर भावसे और स्मरण न रहनेसे जो मैंने दैवसिक (रात्रिक) अतीचार मनसे, वचनसे और कायसे किया है, कराया है और करनेवालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूं। प्रोषध प्रतिमामें बिना देखे और बिना शोधे भूमिमें मल-मूत्र क्षेपण करनेसे, बिना देखी और बिना शोधी वस्तुके ग्रहण करनेसे, बिना देखे और बिना शोधे संस्तर पर आरोहण करनेसे, आवश्यकमें अनादर होनेसे और स्मरण न रहनेसे जो मैंने दैवसिक (रात्रिक) अतीचार मनसे, वचनसे और कायसे किया है, कराया है और करनेवालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत 'मिथ्या होवे।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूं। सचित्तविरत प्रतिमामें जो मैंने असंख्यातासंख्यात पृथिवीकायिक जीव, असंख्यातासंख्यात जल-कायिक जीव, असंख्यातासंख्यात अग्निकायिक जीव, असंख्यातासंख्यात वायुकायिक जीव, अनन्तानन्त वनस्पतिकायिक जीव तथा हरियाई, बीज और अंकुर छेदे, भेदे, इनका उत्तापन, परितापन, विराधन और उपघात मनसे, वचनसे और कायसे किया है, कराया है और करनेवालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

वचसा काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

पडिक्कमामि भंते ! सामाइयपडिमाए मणदुप्पणिधाणेण वा वचिदुप्पणिधाणेण वा कायदुप्पणिधाणेण वा अणादरेण वा सदिअणुवट्ठाणेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा वचसा काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

पडिक्कमामि भंते ! पोसहपडिमाए अप्पडिवेक्खियापमज्जियोस्सग्गेण वा अप्पडिवेक्खियापमज्जियादाणेण वा अप्पडिवेक्खियापमज्जियासंथारोवक्कमणेण वा आवस्सयाणादरेण वा सदिअणुवट्ठावणेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा वचसा काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

पडिक्कमामि भंते ! सचित्तविरदपडिमाए पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा तेउकाइया:जीवा असंखेज्जासंखेज्जा वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा वणप्फदिकाइया जीवा अणंताणंता हरिया बीया अंकुरा छिण्णा भिण्णा एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो [मणसा वचसा काएण] कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो वा तस्स मिच्छा मे दुकडं ।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। रात्रिभक्त प्रतिमामें नौ प्रकारके ब्रह्मचर्यका दिनमें जो मैंने दैवसिक (रात्रिक) अतीचार और अनाचार मनसे, वचनसे और कायसे किया है, कराया है और करनेवालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। ब्रह्मचर्य प्रतिमामें स्त्रीकथाके परवश होनेसे, स्त्रियोंके मनोहर अंगोंके देखनेसे, पूर्वके काम भोगोंका स्मरण होनेसे, कामोद्दीपक रसोंका आसेवन करनेसे और शरीर द्वारा भण्डक्रिया करनेसे जो मैंने दैवसिक (रात्रिक) अतीचार और अनाचार मनसे, वचनसे और कायसे किया है, कराया है और करने-वालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। आरम्भविरति प्रतिमामें कषायके वशको प्राप्त हुए मैंने जो दैवसिक (रात्रिक) आरम्भ मनसे, वचनसे और कायसे किया है, कराया है और करनेवालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। परिग्रहविरति प्रतिमामें वस्त्र मात्र परिग्रहसे अन्य परिग्रहमें मूर्च्छा परिणामके होनेपर जो मैंने दैवसिक (रात्रिक) अतीचार और अनाचार मनसे, वचनसे और कायसे किया है, कराया है और करनेवालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। अनुमतिविरति प्रतिमामें जो कुछ भी अनुमोदना पूछे या बिना पूछे मैंने की है, कराई है और करनेवालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

पडिक्कमामि भंते। राइभत्तपडिमाए णवविहबंभचरियस्स दिवा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो अणाचारो मणसा वचसा काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पडिक्कमामि भंते! बंभचेरपडिमाए इत्थिकहायत्तणेण वा इत्थिमणोहरंगणिरीक्खणेण वा पुव्वरयाणुस्सरणेण वा कामकोवणरसासेवणेण वा सरीरभंडणेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो अणाचारो मणसा वचसा काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पडिक्कमामि भंते! आरम्भविरदिपडिमाए कसायवसंगएण जो मए देवसिओ (राइओ) आरंभो मणसा वचसा काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पडिक्कमामि भंते! परिग्गहविरदिपडिमाए वत्थमेत्तपरिग्गहादो अवरम्मि परिग्गहे मुच्छापरिणामे जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो अणाचारो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पडिक्कमामि भंते! अणुमणुविरदपडिमाए जं किं पि अणुमणणं पुट्ठापुट्ठेण कदं वा कारिदं वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं!

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। उद्दिष्टविरति प्रतिमामें जो मैंने उद्दिष्ट दोषबहुल अहोरात्रिक आहार किया है, आहार कराया है और आहार करनेवालेकी अनुमोदना की है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

आलोचना दण्डक

हे भगवन्! मैंने प्रतिक्रमण-निषीधिकाभक्तिकायोत्सर्ग किया, तत्सम्बन्धी आलोचना करना चाहता हूं। ऋषभदेवसे लेकर महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थङ्करोंको नमस्कार हो। यह निर्ग्रन्थ मार्ग आगममें प्रतिपादित है, सत्य है, अनुत्तर है, केवलीप्ररूपित है, परिपूर्ण है, न्यायसे अबाधित है, समताभावको बढ़ानेवाला है, संशुद्ध है, शल्योंसे परिणत जीवोंकी शल्योंको काटनेवाला है, सिद्धिका मार्ग है, श्रेणिका मार्ग है, क्षान्तिका मार्ग है, मुक्तिका मार्ग है, प्रमुक्तिका मार्ग है, मोक्षका मार्ग है, प्रमोक्षका मार्ग है, संसारसे निकलनेका मार्ग है, निर्वाणका मार्ग है, सब दुखोंसे परिहानिका मार्ग है, सुचरित परिनिर्वाण मार्ग है, यथार्थ है, विच्छेद रहित है, प्रवचनस्वरूप है और उत्तम है। उसे मैं श्रद्धान करता हूं, प्रतीति करता हूं, रुचि करता हूं और स्पर्श करता हूं। इससे उत्कृष्ट अन्य न है, न हुआ और न होगा। ज्ञानके आश्रयसे, दर्शनके आश्रयसे, चारित्रके आश्रयसे और सूत्रके आश्रयसे इस मार्गसे जीव सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं मुक्त होते हैं, उत्कृष्ट निर्वाणको प्राप्त होते हैं, सब दुःखोंका अन्त करते हैं और सब दुःखोंके अन्तको जानते हैं। मैं श्रमण तुल्य हूं, संयत तुल्य हूँ, उपरत हूं, उपशान्त हूं, उपधि-निकृति-मान-माया-मृषा-मिथ्याज्ञान-मिथ्यादर्शन-

पडिक्कमामि भंते ! उद्दिट्ठविरदिपडिमाए उद्दिट्ठदोस-बहुलं अहोरत्तियं आहारयं आहारावियं आहारिज्जंतं वा समणु-मणिदं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

आलोचनादण्डकम्

इच्छामि भंते ! पडिक्कमणणिसीहियाभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं । [णमो चउवीसण्हं तित्थयराणं उसहाइमहा-वीरपज्जवसाणाणं] इमं णिग्गंथं पावयणं [सच्चं] अणुत्तरं केव-लियं पडिपुण्णं णेगाइयं सामाइयं संसुद्धं सल्लकघट्टाणं सल्लकट्टणं सिद्धिमग्गं सेढिमग्गं खंतिमग्गं मुत्तिमग्गं पमुत्तिमग्गं मोक्खमग्गं पमो-क्खमग्गं णिज्जाणमग्गं णिव्वाणमग्गं सव्वदुक्खपरिहाणिमग्गं सुच-रियपरिणिव्वाणमग्गं अवितहं अविसंति पवयणं उत्तमं । तं सद्दहामि तं पत्तियामि तं रोचेमि तं फासेमि । इदो उत्तरं अण्णं णत्थि भूदं ण भवं ण भविस्सदि । णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा सुत्तेण वा इदो जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति परिवियाणंति । समणो मि संजदो मि उवरदो मि उवसंतो मि उवधि-णियडि-माण-माया-मोस-मिच्छा-णाण-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्तं च पडिविरदो मि । सम्मणाण-

मिथ्या-चारित्रसे विरत हूं। जिनेन्द्रदेव द्वारा कहा गया सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र मुझे रुचता है। इस विषयमें मैंने जो कोई दैवसिक (रात्रिक) अतीचार किया है तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

वीरभक्ति

अब दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणमें सब अतीचारोंकी विशुद्धि करनेके लिए पूर्वाचार्य परिपाटीके अनुसार वीरभक्तिकायोत्सर्ग करता हूँ।

[यहाँ पर पञ्चाङ्ग नमस्कार पूर्वक तीन आवर्त और एक प्रणाम करके खड़े-खड़े सामायिकदण्डकका पाठ पढ़े।]

सामायिकदण्डक

अरिहन्तोंको नमस्कार हो, सिद्धोंको नमस्कार हो, आचार्योंको नमस्कार हो, उपाध्यायोंको नमस्कार हो तथा लोकमें सब साधुओंको नमस्कार हो ॥१॥

संसारमें चार मंगल हैं—अरिहन्त मङ्गल हैं, सिद्ध मङ्गल हैं, साधु मङ्गल हैं और केवलिप्रज्ञप्त धर्म मङ्गल है। लोकमें चार उत्तम हैं—अरिहन्त लोकमें उत्तम हैं, सिद्ध लोकमें उत्तम हैं, साधु लोकमें उत्तम हैं और केवलिप्रज्ञप्त धर्म लोकमें उत्तम है। मैं चारकी शरण जाता हूं—अरिहन्तोंकी शरण जाता हूँ, सिद्धोंकी शरण जाता हूँ, साधुओंकी शरण जाता हूं और केवलिप्रज्ञप्त धर्मकी शरण जाता हूं।

सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेदि जं जिणवेरहिं पण्णत्तं। एत्थ मे जो कोइ देवसिओ (राइओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

वीरभक्तिः

अह देवसिय (राइय) पडिक्कमणाए सव्वाइचारविसोहि-णिमित्तं पुव्वाइरियाणुकमेण वीरभत्तिकाउस्सग्गं करेमि।

[अत्र पञ्चाङ्गनमस्कारं कृत्वा उद्भीभूय आवर्तत्रयं प्रणाममेकं च कृत्वा सामायिकदण्डकं पठेत्।]

सामायिकदण्डकम्

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

चत्तारि मंगलं—अरिहंता मंगलं सिद्धा मंगलं साहू मंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंता लोगुत्तमा सिद्धा लोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पवज्जामि—अरिहंते सरणं पवज्जामि सिद्धे सरणं पवज्जामि साहू सरणं पवज्जामि केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।

ढाई द्वीप और दो समुद्रोंके मध्य स्थित पन्द्रह कर्मभूमियोंमें भगवत्स्वरूप, धर्मके आदि कर्ता, तीर्थङ्कर, जिन, जिनोंमें श्रेष्ठ और केवली जितने अरिहन्त हैं; बुद्ध, परम निवृत्ति दशाको प्राप्त, संसारका अन्त करनेवाले और संसारसे पारको प्राप्त हुए जितने सिद्ध हैं; जितने धर्माचार्य हैं; जितने धर्मके उपदेशक उपाध्याय हैं तथा जितने धर्मके नायक साधु हैं; ऐसे जो अपने आत्माका कार्य करनेमें समर्थ उत्कृष्ट धर्मके नायक देवाधिदेव पञ्चपरमेष्ठी हैं उनका तथा ज्ञान, दर्शन और चारित्रका मैं सदा कृतिकर्म करता हूं।

हे भगवन्! मैं सामायिकको स्वीकार करता हूं। परिणाम स्वरूप मैं सब प्रकारके सावद्ययोगका त्याग करता हूं। अपने स्वीकृत कालतक पाप कर्मको मन, वचन और काय इन तीनों योगोंसे मैं न स्वयं करूँगा न दूसरोंसे कराऊँगा और न करते हुएको अनुमोदना करूँगा। हे भगवन्! मैं सामायिक व्रतमें लगनेवाले अतीचारका प्रतिक्रमण करता हूं, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ। जब तक मैं अरिहन्त भगवान्की उपासना करता हूं उस काल तक मैं पाप कर्मरूप दुश्चरितका त्याग करता हूं।

मात्र उच्छ्वास लेना, निःश्वास छोड़ना, पलकें मीचना, पलकें उघाड़ना, खाँसना, छींकना, जंभाई लेना, सूक्ष्म रूपसे अंगोंका संचालन और दृष्टिका संचालन तथा इसी प्रकारके दूसरे सभी समाधिको नहीं प्राप्त हुए आगारोंको छोड़कर मेरा कायोत्सर्ग अविराधित होओ।

[यहाँ पर तीन आवर्त और एक प्रणाम करके जिनमुद्रासे पञ्च नमस्कार मन्त्रका दिनमें १०८ और रात्रिमें ५४ उच्छ्वासोंमें क्रमसे ३६ और १८ बार ध्यान करे। अनन्तर पञ्चांग नमस्कार पूर्वक तीन आवर्त और एक प्रणाम करके थोस्सामि दण्डक पढ़े।]

अड्ढाइज्जदीव-दोसमुद्दे सु पण्णारसकम्मभूमीसु जाव अरिहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं सिद्धाणं बुद्धाणं परिणिव्वुदाणं अंतयडाणं पारयडाणं धम्माइरियाणं धम्मदेसियाणं धम्मणायगाणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं देवाहिदेवाणं णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं सदा करेमि किदियम्मं।

करेमि भंते ! सामाइयं सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि। जावणियमं तिविहेण मणसा वचसा काएण ण करेमि ण कारेमि कीरंतं पि ण समणुमणामि। तस्स भंते ! अइचारं पच्चक्खामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं। जाव अरिहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि ताव कालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

अण्णत्थ उस्सासिएण वा णिस्सासिएण वा उम्मिसिएण वा णिम्मिसिएण वा खासिएण वा छिंकिएण वा जंभाइएण वा सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं वा दिट्ठिसंचालेहिं वा इच्चेवमाइएहिं सव्वेहिं असमाहिं पत्तेहिं आयारेहिं अविराहिओ होज्ज मे काउस्सग्गो ।

[अत्र आवर्तत्रयं प्रणाममेकं च कृत्वा जिनमुद्रामवलम्ब्य दिवसे अष्टोत्तरशतोच्छ्‌वासैः रात्रौ चतुःपञ्चाशदुच्छ्‌वासैः क्रमशः षट्त्रिंशद्वारं अष्टादशवारञ्च पञ्चनमस्कारमन्त्रं ध्यायेत्। ततः पञ्चाङ्गनमस्कारपूर्वकं आवर्तत्रयं प्रणाममेकं च कृत्वा त्थोस्सामिदण्डकं पठेत्।]

थोस्सामिदण्डक

जो जिनोंमें श्रेष्ठ हैं, केवली हैं, जिन्होंने अनन्त संसारको जीत लिया है, जो मनुष्योंमें उत्कृष्ट जनोंके द्वारा पूजित हैं, जिन्होंने रज-रूपी कर्ममलको नष्ट कर दिया है और जो महाप्रज्ञाको प्राप्त हैं ऐसे तीर्थङ्करोंका मैं स्तवन करता हूँ ॥ १ ॥

जो लोकमें धर्मका उद्योत करनेवाले हैं, जो धर्मतीर्थकी स्थापना करनेवाले हैं, जो राग और द्वेषको जीतनेवाले हैं और जो केवल-असहाय अवस्थाको प्राप्त हुए हैं ऐसे चौबीस अरिहन्तोंका मैं कीर्तन करूँगा ॥ २ ॥

ऋषभ और अजित जिनकी वन्दना करता हूँ। सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपाश्व और चन्द्रप्रभ जिनको नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

सुविधि (पुष्पदन्त), शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म और शान्ति भगवान्‌की वन्दना करता हूँ ॥ ४ ॥

कुन्थु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्व और वर्धमान जिनवरेन्द्रकी वन्दना करता हूँ ॥ ५ ॥

इस प्रकार जिनकी मैंने स्तुति की है, जो कर्मरूपी धूलि तथा मलसे रहित हैं और जो जरा तथा मरणसे सर्वथा मुक्त हैं वे जिनोंमें श्रेष्ठ चौबीस तीर्थङ्कर मुझपर प्रसन्न हों ॥ ६ ॥

जिनकी देवों और मनुष्योंने स्तुति की है, वन्दना की है, पूजा की है और जो लोकमें उत्तम हैं वे सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हुए जिनदेव मुझे परिपूर्ण ज्ञान, समाधि और बोधि प्रदान करें ॥ ७ ॥

त्थोस्सामिदंडकम्

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंतजिणे ।
णरपवरलोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे ॥ १ ॥

लोयस्सुज्जोययरे धम्मंतित्थंकरे जिणे वंदे ।
अरिहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो ॥ २ ॥

उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥ ३ ॥

सुविहिं च पुप्फयंतं सीयल सेयं च वासुपुज्जं च ।
विमलमणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि ॥ ४ ॥

कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं ।
वंदामि रिट्ठणेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ॥ ५ ॥

एवं मए अभित्थुआ विहुयरयमला पहीणजरमरणा ।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ॥ ६ ॥

कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगुत्तमा जिणा सिद्धा ।
आरोग्गणाणलाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥ ७ ॥

जो असंख्य चन्द्रोंसे भी अधिक निर्मल हैं, जो असंख्य सूर्योंसे भी अधिक प्रकाशमान हैं और जो सागरके समान अत्यन्त गम्भीर हैं वे तीर्थङ्कर सिद्ध भगवान् मुझे सिद्धि प्रदान करें ॥ ८ ॥

[यहाँपर तीन आवर्त और एक प्रणाम करे। अनन्तर वीरभक्तिका पाठ पढ़े।]

वीरभक्ति

जो चराचर सब द्रव्योंको, उनके सब गुणोंको और भूत, भावी और वर्तमान सब पर्यायोंको सदा सब प्रकारसे प्रत्येक समयमें विधि-पूर्वक एक साथ जानते हैं और इस कारणसे जो सर्वज्ञ कहे जाते हैं उन सर्वज्ञ महान् वीर जिनेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

वीर जिन सब सुरों और असुरोंके इन्द्रोंसे पूजित हैं, वीर जिनको बुधजन आश्रय करके स्थित हैं, वीर जिनके द्वारा ही अपना कर्म-संघात कहा गया है, वीर जिनके लिए भक्तिपूर्वक नमस्कार है। वीर जिनसे ही यह अतुल तीर्थ प्रवृत्त हुआ है, वीर जिनका तप भी वीर-स्वरूप है, श्री, द्युति, कान्ति, कीर्ति और धृति ये सब गुण वीर जिनमें विद्यमान हैं। हे वीर आपके सम्पर्कमें ही कल्याण है ॥ २ ॥

जो ध्यानमें स्थित होकर तथा संयम और योगसे युक्त होकर वीर जिनके चरणयुगलको नित्य ही प्रणाम करते हैं वे लोकमें शोकसे रहित होते हैं तथा विषम संसाररूपी दुर्गके पार हो जाते हैं ॥ ३ ॥

[यदि विशेष अवकाश न हो तो लघु वीरभक्ति पढ़ें।]

लघुवीरभक्ति

जो जन्म और मरण के लिए शत्रु के समान हैं, विज्ञान ज्ञान सम्पन्न हैं, लोक को उद्योतित करनेवाले हैं और जिनवरोंमें चन्द्रमाके तुल्य हैं वे वीर जिन मुझे बोधि प्रदान करें ॥ १ ॥

चंदेहिं णिम्मलयरा आइच्चेहिं अहियपयासंता ।
सायरमिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥

[अत्र आवर्तत्रयं प्रणाममेकं च कृत्वा वीरभक्तिं पठेत् ।]

वीरभक्तिः

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद् द्रव्याणि तेषां गुणान् ।
पर्यायानपि भूत-भावि-भवतः सर्वान् सदा सर्वथा ॥
जानीते युगपत् प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते ।
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः ॥१॥

वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीरं बुधाः संश्रिताः ।
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो वीराय भक्त्या नमः ॥
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं वीरस्य वीरं तपो ।
वीरे श्री-द्युति-कान्ति-कीर्ति-धृतयो हे वीर ! भद्रं त्वयि ॥२॥

ये वीरपादौ प्रणमन्ति नित्यं ध्याने स्थिताः संयमयोगयुक्ताः ।
ते वीतशोका हि भवन्ति लोके संसारदुर्गं विषमं तरन्ति ॥३॥

[अवकाशाभावे लघुवीरभक्ति पठेत् ।]

लघुवीरभक्तिः

वीरो जर-मरणरिऊ वीरो विण्णाणणाणसंपण्णो ।
लोयस्सुज्जोययरो जिणवरचंदो दिसउ बोहं ॥१॥

आलोचना

हे भगवन्! मैंने वीरभक्तिकायोत्सर्ग किया। तत्सम्बन्धी आलोचना करना चाहता हूँ। ज्ञानके विषयमें, दर्शनके विषयमें, चारित्रके विषयमें, सूत्रके विषयमें, सामायिकके विषयमें और बारह व्रतोंकी विराधना करते समय जो मैंने दैवसिक (रात्रिक) अतीचार, अनाचार, आभोग और अनाभोग किया तथा कायिक दुष्ट आचरण किया, वाचनिक दुष्ट कहा और मानसिक दुष्टतापूर्ण विचार किया तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

चौबीस तीर्थङ्करभक्ति कृतिकर्म

अब दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणमें सब अतीचारोंकी विशुद्धि करनेके लिए पूर्वाचार्यानुक्रमसे चौबीस तीर्थङ्करभक्तिकृतिकर्म करता हूँ।

[यहाँ पचाङ्ग नमस्कारपूर्वक खड़े होकर तीन आवर्त और एक प्रणाम करके तीर्थङ्करभक्तिकृतिकर्मका पाठ करे।]

सामायिकदण्डक

अरिहन्तोंको नमस्कार हो, सिद्धोंको नमस्कार हो, आचार्योंको नमस्कार हो, उपाध्यायोंको नमस्कार हो तथा लोकमें सब साधुओंको नमस्कार हो ॥१॥

संसारमें चार मंगल हैं—अरिहन्त मङ्गल हैं, सिद्ध मङ्गल हैं, साधु मङ्गल हैं और केवलिप्रज्ञप्त धर्म मङ्गल है। लोकमें चार उत्तम हैं—अरिहन्त लोकमें उत्तम हैं, सिद्ध लोकमें उत्ताम हैं, साधु लोकमें उत्तम हैं और केवलिप्रज्ञप्त धर्म लोकमें उत्ताम है। मैं चारकी शरण जाता हूं—अरिहन्तोंकी शरण जाता हूँ, सिद्धोंको शरण जाता हूँ, साधुओंकी शरण जाता हूं और केवलिप्रज्ञप्त धर्मकी शरण जाता हूं।

आलोचनादण्डकम्

इच्छामि भंते ! वीरभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो आणाचारो आभोगो अणाभोगो काइओ वाइओ माणसिओ दुच्चरिओ दुब्भासिओ दुच्चिंतिओ णाणे दंसणे चरित्ते सुत्ते सामाइए बारसण्हं वदाणं विराहणाए [कओ] तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

चतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तिकृतिकर्म

अह देवसिय (राइय) पडिक्कमणाए सव्वाइचारविसोहि-णिमित्तं पुव्वाइरियाणुकमेण चउवीसतित्थयरभत्तिकाउस्सग्गं करेमि।

[अत्र पञ्चाङ्गनमस्कारं कृत्वा उद्भीभूय आवर्तत्रयं प्रणाममेकं च कृत्वा चतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तिकृत्तिकर्म कुर्यात्।]

सामायिकदण्डकम्

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

चत्तारि मंगलं—अरिहंता मंगलं सिद्धा मंगलं साहू मंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंता लोगुत्तमा सिद्धा लोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंते सरणं पव्वज्जामि सिद्धे सरणं पव्वज्जामि साहू सरणं पव्वज्जामि केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

ढाई द्वीप और दो समुद्रोंके मध्य स्थित पन्द्रह कर्मभूमियोंमें भगवत्स्वरूप, धर्मके आदि कर्ता, तीर्थङ्कर, जिन, जिनोंमें श्रेष्ठ और केवली जितने अरिहन्त हैं; बुद्ध, परम निवृत्ति दशाको प्राप्त, संसारका अन्त करनेवाले और संसारसे पारको प्राप्त हुए जितने सिद्ध हैं; जितने धर्माचार्य हैं; जितने धर्मके उपदेशक उपाध्याय हैं तथा जितने धर्मके नायक साधु हैं; ऐसे जो अपने आत्माका कार्य करनेमें समर्थ उत्कृष्ट धर्मके नायक देवाधिदेव पञ्चपरमेष्ठी हैं उनका तथा ज्ञान, दर्शन और चारित्रका मैं सदा कृतिकर्म करता हूं।

हे भगवन्! मैं सामायिकको स्वीकार करता हूं। परिणाम स्वरूप मैं सब प्रकारके सावद्ययोगका त्याग करता हूं। अपने स्वीकृत कालतक पाप कर्मको मन, वचन और काय इन तीनों योगोंसे मैं न स्वयं करूँगा न दूसरोंसे कराऊँगा और न करते हुएकी अनुमोदना करूँगा। हे भगवन्! मैं सामायिक व्रतमें लगनेवाले अतीचारका प्रतिक्रमण करता हूं, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ। जब तक मैं अरिहन्त भगवान्‌की उपासना करता हूं उस काल तक मैं पाप कर्मरूप दुश्चरितका त्याग करता हूं।

मात्र उच्छ्वास लेना, निःश्वास छोड़ना, पलकें मीचना, पलकें उघाड़ना, खाँसना, छींकना, जंभाई लेना, सूक्ष्म रूपसे अंगोंका संचालन और दृष्टिका संचालन तथा इसी प्रकारके दूसरे सभी समाधिको नहीं प्राप्त हुए आगारोंको छोड़कर मेरा कायोत्सर्ग अविराधित होओ।

[यहाँ पर तीन आवर्त और एक प्रणाम करके जिनमुद्रासे पञ्च नमस्कार मन्त्रका २७ उच्छ्वासोंमें ९ बार ध्यान करे। अनन्तर पञ्चांग नमस्कार पूर्वक तीन आवर्त और एक प्रणाम करके थोस्सामि दण्डक पढ़े।]

अड्ढाइज्जदीव-दोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमीसु जाव अरिहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं सिद्धाणं बुद्धाण परिणिव्वुदाणं अंतयडाणं पारयडाणं धम्माइरियाणं धम्मदेसियाणं धम्मणायगाणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं देवाहिदेवाणं णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं सदा करेमि किदियम्मं ।

करेमि भंते ! सामाइयं सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि । जावणियमं तिविहेण मणसा वचसा काएण ण करेमि ण कारेमि कीरंतं पि ण समणुमणामि । तस्स भंते ! अइचारं पच्चक्खामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं । जाव अरिहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि ताव कालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

अण्णत्थ उस्सासिएण वा णिस्सासिएण वा उम्मिसिएण वा णिम्मिसिएण वा खासिएण वा छिंकिएण वा जंभाइएण वा सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं वा दिट्ठिसंचालेहिं वा इच्चेवमाइएहिं सव्वेहिं असमाहिं पत्तेहिं आयारेहिं अविराहिओ होज्ज मे काउस्सग्गो ।

[अत्र आवर्तत्रयं प्रणाममेकं च कृत्वा जिनमुद्रामवलम्ब्य सप्तविंशत्युच्छ्वासैः नववारं पञ्चनमस्कारमन्त्रं ध्यायेत् । ततः पञ्चाङ्गनमस्कारपूर्वकं आवर्तत्रयं प्रणाममेकं च कृत्वा त्थोस्सामिदण्डकं पठेत् ।]

थोस्सामिदण्डक

जो जिनोंमें श्रेष्ठ हैं, केवली हैं, जिन्होंने अनन्त संसारको जीत लिया है, जो मनुष्योंमें उत्कृष्ट जनोंके द्वारा पूजित हैं, जिन्होंने रज-रूपी कर्ममलको नष्ट कर दिया है और जो महाप्रज्ञाको प्राप्त हैं ऐसे तीर्थङ्करोंका मैं स्तवन करता हूँ ॥ १ ॥

जो लोकमें धर्मका उद्योत करनेवाले हैं, जो धर्मतीर्थकी स्थापना करनेवाले हैं, जो राग और द्वेषको जीतनेवाले हैं और जो केवल-असहाय अवस्थाको प्राप्त हुए हैं ऐसे चौबीस अरिहन्तोंका मैं कीर्तन करूँगा ॥ २ ॥

ऋषभ और अजित जिनकी वन्दना करता हूँ। सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व और चन्द्रप्रभ जिनको नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

सुविधि (पुष्पदन्त), शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म और शान्ति भगवान्‌की वन्दना करता हूँ ॥ ४ ॥

कुन्थु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्व और वर्धमान जिनवरेन्द्रकी वन्दना करता हूँ ॥ ५ ॥

इस प्रकार जिनकी मैंने स्तुति की है, जो कर्मरूपी धूलि तथा मलसे रहित हैं और जो जरा तथा मरणसे सर्वथा मुक्त हैं वे जिनोंमें श्रेष्ठ चौबीस तीर्थङ्कर मुझपर प्रसन्न हों ॥ ६ ॥

जिनको देवों और मनुष्योंने स्तुति की है, वन्दना की है, पूजा की है और जो लोकमें उत्तम हैं वे सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हुए जिनदेव मुझे परिपूर्ण ज्ञान, समाधि और बोधि प्रदान करें ॥ ७ ॥

त्थोस्सामिदंडकम्

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंतजिणे ।
णरपवरलोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे ॥ १ ॥

लोयस्सुज्जोवयरे धम्मंतित्थंकरे जिणे वंदे ।
अरिहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो ॥ २ ॥

उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुवासं जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥ ३ ॥

सुविहिं च पुप्फयंतं सीयल सेयं च वासुपुज्जं च ।
विमलमणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि ॥ ४ ॥

कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं ।
वंदामि रिट्ठणेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ॥ ५ ॥

एवं मए अभित्थुआ विहुयरयमला पहीणजरमरणा ।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ॥ ६ ॥

कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगुत्तमा जिणा सिद्धा ।
आरोग्गणाणलाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥ ७ ॥

जो असंख्य चन्द्रोंसे भी अधिक निर्मल हैं, जो असंख्य सूर्योंसे भी अधिक प्रकाशमान हैं और जो सागरके समान अत्यन्त गम्भीर हैं वे तीर्थङ्कर सिद्ध भगवान् मुझे सिद्धि प्रदान करें ॥ ८ ॥

[यहाँ पर तीन आवर्त और एक प्रणाम करे। अनन्तर चौबीस तीर्थंकर भक्तिका पाठ पढ़े।]

चौबीस तीर्थङ्करभक्ति

जो लोकमें एक हजार आठ लक्षणोंके धारक हैं, जो ज्ञेयरूपी समुद्रके अन्तको प्राप्त हुए हैं, जो संसारबन्धनके हेतुओंका सम्यक् प्रकारसे मथन करनेके कारण चन्द्र और सूर्यसे भी अधिक तेजवाले हैं, जो साधु, इन्द्र, देव और देवाङ्गनाओंके सैकड़ों समूहों द्वारा गीत, नमस्कृत और पूजित हुए, उन ऋषभदेवसे लेकर महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरोंको मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥१॥

देवपूज्य श्री नाभेय जिनको, सब लोकमें उत्कृष्ट दीपकस्वरूप श्री अजित जिनवरको, सर्वज्ञ श्री सम्भव जिनको, मुनिगणोंमें श्रेष्ठ और देवोंके देव श्री अभिनन्दन जिनको, कर्मरूपी शत्रुओंका नाश करनेवाले श्री सुमति जिनको, उत्तम कमलके समान रूपवाले और पद्मपुष्पके समान गन्धवाले श्री पद्मप्रभ जिनको, क्षमाशील और जितेन्द्रिय श्री सुपार्श्व जिनको तथा पूर्ण चन्द्र तुल्य चन्द्रप्रभ जिनको मैं पूजता हूँ ॥२॥

लोक विख्यात श्री पुष्पदन्त जिनको, भवभयका मथन करनेवाले और तीन लोकके नाथ श्री शीतल जिनको, शीलके घर श्री श्रेयांस जिनको उत्तम मनुष्योंके गुरु लोकपूज्य श्री वासुपूज्य जिनको, मुक्तिको प्राप्त हुए और इन्द्रियोंका दमन करनेवाले श्री विमल ऋषिपतिको, सिंहसेनके पुत्र श्री अनन्त मुनीन्द्रको, समीचीन धर्मके केतु श्री धर्म जिनको तथा शम और दमके निलय तथा शरणरूप श्री शान्ति जिनको मैं अपनी स्तुतिका विषय बनाता हूँ ॥ ३ ॥

चंदेहिं णिम्मलयरा आइच्चेहिं अहियपयासंता ।
सायरमिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥

[अत्र आवर्तत्रयं प्रणाममेकं च कृत्वा वीरभक्तिं पठेत् ।]

चतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तिः

ये लोकेऽष्टसहस्रलक्षणधरा ज्ञेयार्णवान्तर्गता
ये सम्यग्भवजालहेतुमथनाश्चन्द्रार्कतेजोऽधिकाः ।
ये साध्विन्द्रसुराप्सरोगणशतैर्गीतप्रणुत्यार्चिता
स्तान् देवान् वृषभादिवीरचरमान् भक्त्या नमस्याम्यहम् ॥१॥

नाभेयं देवपूज्यं जिनवरमजितं सर्वलोकप्रदीपं
सर्वज्ञं सम्भवाख्यं मुनिगणवृषभं नन्दनं देवदेवम् ।
कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं वरकमलनिभं पद्मपुष्पाभिगन्धं
क्षान्तं दान्तं सुपार्श्वं सकलशशिनिभं चन्द्रनामानमीडे ॥२॥

विख्यातं पुष्पदन्तं भवभयमथनं शीतलं लोकनाथं
श्रेयांसं शीलकोशं प्रवरनरगुरुं वासुपूज्यं सुपूज्यम् ।
मुक्तं दान्तेन्द्रियाश्वं विमलमृषिपतिं सिंहसैन्यं मुनीन्द्रम्
धर्मं सद्धर्मकेतुं शमदमनिलयं स्तौमि शान्तिं शरण्यम् ॥३॥

सिद्धालयमें स्थित श्री कुन्थु जिनको, भोग, बाण और चक्ररत्नके त्यागी श्रमणपति अर जिनको, विख्यात वंशमें उत्पन्न हुए श्री मल्लि जिनको, विद्याधरोंके समूह द्वारा पूजित और सुखकी राशि मुनि सुव्रत जिनको, देवेन्द्रोंके द्वारा पूजित श्री नमि प्रभुको, हरिकुलके तिलकरूप और भवका अन्त करनेवाले श्री नेमि जिनको, नागेन्द्रके द्वारा पूजित श्री पार्श्व जिनको और श्री वर्धमान जिनको मैं भक्तिपूर्वक शरण जाता हूँ ॥५॥

[यदि विशेष अवकाश न हो तो लघु चौबीस तीर्थङ्करभक्ति पढ़े ।]

लघु चौबीस तीर्थंकरभक्ति

श्री ऋषभदेवसे लेकर महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थङ्करोंको मैं बन्दना करता हूँ। तथा सब श्रमणोंको, सब गणधरोंको और सब सिद्धोंको भी मैं सिरसे नमस्कार करता हूँ ॥१॥

आलोचनादण्डक

हे भगवन्! मैंने चौबीस तीर्थङ्करभक्ति कायोत्सर्ग किया। तत्सम्बन्धी आलोचना करना चाहता हूँ। पाँच महाकल्याणकोंसे सम्पन्न, आठ महाप्रातिहार्योंसे युक्त, चौतीस विशेष अतिशय सहित, देवेन्द्रोंके रत्नजटित मुकुटोंसे युक्त मस्तकोंसे पूजित, बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती, ऋषि, मुनि, यति और अनगारोंसे वेष्टित तथा लाखों स्तुतियोंके निलय श्री ऋषभ जिनसे लेकर महावीर पर्यन्त मङ्गलस्वरूप चौबीस महापुरुषोंको भक्तिके साथ मैं प्रतिदिन अर्चता हूँ, पूजता हूँ, बन्दना करता हूँ और नमस्कार करता हूँ। मेरे दुःखोंका क्षय हो, कर्मोंका क्षय हो, रत्नत्रयकी प्राप्ति हो, सुगतिमें गमन हो, समाधिमरण हो और जिनेन्द्रदेवके गुणोंकी सम्प्राप्ति हो।

कुन्थुं सिद्धालयस्थं श्रमणपतिमरं त्यक्तभोगेषु चक्रम् ।
मल्लिं विख्यातगोत्रं खचरगणनुतं सुव्रतं सौख्यराशिम् ।
देवेन्द्राच्यं नमीशं हरिकुलतिलकं नेमिचन्द्रं भवान्तं
पार्श्वं नागेन्द्रवन्द्यं शरणमहमितो वर्धमानं च भक्त्या ॥ ४ ॥

[अवकाशाभावे लघुचतुर्विंशतितीर्थङ्करभक्तिं पठेत् ।]

लघुचतुर्विंशतितीर्थङ्करभक्तिः

चउवीसं तित्थयरं उसहाइवीरपच्छिमे वंदे ।
सव्वेसिं गुणगणहरसिद्धे सिरसा णमंसामि ॥ १ ॥

आलोचनादण्डकम्

इच्छामि भंते ! चउवीसतित्थयरभत्तिकाउसग्गो कओ तस्सालोचेउं । पंचमहाकल्लाणसंपण्णाणं अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं चउतीसातिसयविसेससंजुत्ताणं बत्तीसदेविंदमणिमउडमत्थयमहियाणं बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसि-मुणि-जइ-अणगारोवगूढाणं थुइसयसहस्सणिलयाणं उसहाइवीरपच्छिममंगलमहापुरिसाणं णिच्चकालं अच्चेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं ।

दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्तत्याग, रात्रिभक्तित्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भत्याग, परित्याग, अनुमतित्याग और उद्दिष्टत्याग ये देशविरतके ग्यारह स्थान हैं ॥ १ ॥

[इस प्रकार श्रावक प्रतिक्रमविधि समाप्त हुई ।]

कल्याणालोचना

मैं नमन करता इष्ट जिनको शुद्ध ज्ञान स्वरूप जो ।
कल्याण आलोचन कहूँ अब स्व-परहित अनुरूप जो ॥१॥

हे जीव ! तू मिथ्यात्व वश ही लोक में फिरता रहा ।
पर बोधिलाभ बिना अनन्तों व्यर्थ भव धरता रहा ॥२॥

संसार में भ्रमते हुए जिनधर्म यह न तुझे रुचा ।
जिसके बिना तू अनन्त दुखमें आज तक रह रह पचा ॥३॥

संसार में रहकर अनन्तों जन्म ले ले कर थका ।
पर धर्म बिन नहिं हाय उनका अन्त अब तक कर सका ॥४॥

छयासठ सहस अरु तीन सौ छत्तीस भव तक धर लिये ।
अन्तर्मुहूर्त प्रमाणमें अरु निगोद मध्य मरे जिये ॥५॥

द्वि-इन्द्रियमें अस्सी तथा भव साठ हैं ती-इन्द्रिय में ।
चतुरिन्द्रिय में चालीस अरु चौबीस हैं पञ्चेन्द्रिय में ॥६॥

पृथ्वी प्रभृति एकेन्द्रिय में जो हैं अपर्याप्तक अभी ।
छह सहस अरु बारह भवों को एकैक धरते सभी ॥७॥

दंसणवयसामाइयपोसहसचित्तराइभत्ते य ।
बंभारंभपरिग्गहअणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदो य ॥ १ ॥

[इति श्रावकप्रतिक्रमणविधिः समाप्ता ।]

कल्लाणालोयणा

परमप्पयं वडुमइं परमेट्ठीणं करेमि णवकारं ।
सग-परसिद्धिणिमित्तं कल्लाणालोयणा वोच्छं ॥ १ ॥

रे जीवाणंतभवे संसारे संसरंत बहुवारं ।
पत्तो ण बोहिलाहो मिच्छत्तविजंभपयडीहिं ॥ २ ॥

संसारभमणगमणं कुणंत आराहिओ ण जिणधम्मो ।
तेण विणा वरदुक्खं पत्तो सि अणंतवाराइं ॥ ३ ॥

संसारे णिवसंतो अणंतमरणाइं पाविओ सि तुमं ।
केवलि विणा य तेसिं संखापज्जत्ति णो हवइ ॥ ४ ॥

तिण्णिसया छत्तीसा छावट्ठिसहस्सवारमरणाइं ।
अंतोमुहुत्तमज्झे पत्तो सि णिगोयमज्झम्मि ॥ ५ ॥

वियलिंदिए असीदी सट्ठी चालीसमेव जाणीहि ।
पंचिंदिय चउवीसं खुद्दभवंतोमुहुत्तस्स ॥ ६ ॥

पुढविदगागणिमारुदसाहारणथूलसुहुमपत्तेया ।
एदेसु अपुण्णेसु य एक्केक्क बार खं छक्कं ॥ ७ ॥

अन्योय भक्षण वे करें सह कर सदा दारुण व्यथा।
पर्याप्ति बिन मति शून्य कैसे धर्म की चाहें कथा ॥८॥

माता पिता बन्धू स्वजन जाता न कोई साथ है।
संसार में भ्रमता हुआ प्राणी सदैव अनाथ है ॥९॥

आयु क्षय के बाद में कोई न जीवन दे सके।
देवेन्द्र या मनुजेन्द्र मणि औषधि न कुछ भी कर सके ॥१०॥

त्रिःशुद्धि योग प्रभाव से जिनधर्म यह तुझको मिला।
कर दे क्षमा सब को भुवन में सौम्य रस अमृत पिला ॥११॥

हा ! तीन सौ त्रेसठ मतों का कुमति वश आश्रय लिया।
सम्यक्त्व को घाता सदा, हो पाप मिथ्या, जो किया ॥१२॥

मद्य मांस तथा न मधु को त्यागा न व्यसनों को त्रिधा।
यम नियम भी नहिं कर सका वे पाप सारे हों मुधा ॥१३॥

अणुव्रत महाव्रत यम नियम गुरु ज्ञान शील स्वभाव ये।
जो जो विराधे हों सभी दुष्कृत मुधा मेरे लिये ॥१४॥

एक इन्द्रिय के लाख बावन अरु विकल छह लाख हैं।
सुर नरक पशु सब लाख बारह मनुज चौदह लाख हैं ॥१५॥

मुझसे चुरासी लाख ये सब मरे-पिटे सहस्रधा।
खेद उनका हो रहा है पाप मेरे हों मुधा ॥१६॥

अण्णोण्णं खज्जंता जीवा पावंति दारुणं दुक्खं ।
ण हु तेसिं पज्जत्तिं कह पावइ धम्ममइसुण्णो ॥ ८ ॥
माया पिया कुटुंबो सुजणजणो को वि णायाइ सद्दं ।
एगागी भमइ सदा ण हि विदिओ अत्थि संसारे ॥ ९ ॥
आउक्खए वि पत्ते ण समत्थो को वि आउदाणे य ।
देविंदो ण णरिंदो मणि-ओसह-मंतजालाइं ॥ १० ॥
संपडि जिणवरधम्मं लद्धो सि तुमं विशुद्धजोएण ।
खामसु जीवा सव्वे पत्तेयसमये पयत्तेण ॥ ११ ॥
तिण्णिसया तेसट्ठी मिच्छत्ता दंसणस्स पडिवक्खा ।
अण्णाणे सद्दहिया मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ १२ ॥
महु-मज्ज-मंस-जूआपहुदीवसणाइं सत्तभेयाइं ।
णियमो ण कओ तेसिं मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥१३॥
अणुवय-महव्वया जे जम-णियमा सील साहुगुरुदिण्णा ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ १४ ॥
णिच्चिदरधादुसत्त य तरु दस वियलिंदिएसु छच्चेव ।
सुर-णरय-तिरियचदुरो चउदस मणुए सदसहस्सा ॥१५॥
एदे सव्वे जीवा चउरासीलक्कखजोणिवसि पत्ता ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ १६ ॥

ये भूमि जल पावक तथा वायू हरित विकलत्रिकं ।
जो जो विराधे उन सभी का पाप मिथ्या हो स्वकं ॥१७॥

अतिचार सत्तर सब व्रतों के जो किये मैंने त्रिधा ।
समता क्षमा छूटी कभी वे पाप होवें मुधा ॥१८॥

फल पुष्प छल्ली बेल खाये अनछना जो जल पिया ।
वस्त्र धोया तन सँजोया पाप शून्य बने हिया ॥१९॥

जो शील तप संयम विनय उपवास या उत्तम क्षमा ।
धारण न इनको कर सका वे पाप सारे हों क्षमा ॥२०॥

फल कन्द मूल सचित्त खाये रात्रि भोजन या त्रिधा ।
अज्ञान वश जो जो किये वे पाप सारे हों मुधा ॥२१॥

नहिं देव पूजा दान भी सत्पात्र को न दिया त्रिधा ।
गमनागमन व अयत्न वश सब पाप वे होवें मुधा ॥२२॥

नहिं ब्रह्म पाला कुसंग छोड़ा बन प्रमादी जन त्रिधा ।
अरु जीव वध भक्षण किये हा पाप सारे हों मुधा ॥२३॥

कर्मभू के गत अनागत अरु साम्प्रतिक जितने त्रिधा ।
तीर्थंकरों का मार्ग छोड़ा वे पाप सारे हों मुधा ॥२४॥

अरिहंत सिद्ध गणी तथा पाठक यती सब ही त्रिधा ।
जो जो विराधे उन सभी का पाप सब होवे मुधा ॥२५॥

पुढवि-जलग्गि-वाऊ तेऊ वणप्फई वियल-तसा ।
जे जे विराहिया (खलु) मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ १७ ॥

मल सत्तरी जिणुत्ता वयविसए जा विराहणा विविहा ।
सामाइय खमाइया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ १८ ॥

फल-फुल्ल-छल्लि-वल्ली अणगलण्हाणं च धोवणाईहिं ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ १९ ॥

णो सीलं णेव खमा विणओ तवो ण संजमोववासा ।
ण कया ण भाविया [खलु] मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ।२०।

कंद-फल-मूल-बीया सचित्त-रयणीभोयणाहारा ।
अण्णाणे जे वि कया मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ २१ ॥

णो पूया जिणचरणे ण पत्तदाणं ण चेरियागमणं ।
ण कया ण भाविया मई मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ २२ ॥

बंभारंभ-परिग्गह सावज्जा बहु पमाददोसेण ।
जीवा विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ २३ ॥

सत्तरिसयखेत्तभवा तीदाणागयसुवट्टमाणजिणा ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ २४ ॥

अरुहा सिद्धाइरिया उवज्झाया साहु पंच परमेट्ठी ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ २५ ॥

जिनधर्म प्रतिमा चैत्य वच अरु कृत्रिमा व अकृत्रिमा ।
जो जो विराधे उन सभी का पाप सब होवे क्षमा ॥२६॥

दर्शन ज्ञान व चरित्र है जो आठ आठ व पञ्चधा ।
जो जो विराधे उन सभी का पाप सब होवे मुधा ॥२७॥

मति श्रुत अवधि अरु मनःपर्यय और केवल ये त्रिधा ।
जो जो विराधे उन सभी का पाप सब होवे मुधा ॥२८॥

आचार आदिक अंग जिन अनुरूप पूर्व प्रकीर्णकं ।
जो जो विराधे उन सभीका पाप मिथ्या हो स्वकं ॥२९॥

पाचों महाव्रत सहस अठदस शीलधारी मुनि तथा ।
जो जो विराधे उन सभी का पाप सब होवे वृथा ॥३०॥

हैं जनक सम शुभ ऋद्धिधारी लोक में गणपति महा ।
जो जो विराधे उन सभी का पाप मिथ्या हो अहा ॥३१॥

निर्ग्रन्थ आर्या श्राविका श्रावक चतुर्विध संघ भी ।
जो जो विराधे उन सभी का पाप मिथ्या हो अभी ॥३२॥

सुर असुर नारक या तिर्यक् की योनि के प्राणी सभी ।
जो जो विराधे उन सभी का पाप मिथ्या हो अभी ॥३३॥

क्रोधादि चार कषाय जो हैं राग द्वेष स्वरूप हा ।
अज्ञान वश इनको भजा मैं पाप मिथ्या हो महा ॥३४॥

जिणवयण-धम्म-चेइय-जिणपडिमा किट्टिमा अकिट्टिमया ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ २६ ॥

दंसण-णाण-चरित्ते दोसा अट्ठट्ठ-पंचभेयाइं ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ २७ ॥

मइ-सुय-ओही मणपज्जयं तहा केवलं च पंचमयं ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२८॥

आयारादी अंगा पुव्व-पइण्णा जिणेहिं पण्णत्ता ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२९॥

पंचमहव्वयजुत्ता अट्ठादससहस्ससीलकयसोहा ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥३०॥

लोये पियासमाणा रिद्धिपवण्णा महागणवइया ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥३१॥

णिग्गंथ अज्जियाओ सड्ढा सड्ढी य चउविहो संघो ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥३२॥

देवासुरा मणुस्सा णेरइया तिरियजोणिगयजीवा ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ ३३ ॥

कोहो माणो माया लोहो एए राय-दोसा य ।
अणणाणे जे वि कया मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥३४॥

पर वस्त्र पर रमणी प्रमादी बन किये जो पाप भी ।
करणीय नहिं जो वह किया वे पाप मिथ्या हों सभी ॥३५॥

मुझमें स्वभाव सुसिद्धता अरु सब विकल्प विमुक्तता ।
कुछ अन्य मुझको शरण नाहीं है शरण निज शुद्धता ॥३६॥

नीरस अरूप अगन्ध सुखमय व अबाध ज्ञानमयी स्वतः ।
कुछ अन्य मुझको शरण नाहीं है शरण निज शुद्धता ॥३७॥

निज भाव में रहता हुआ जो ज्ञान सबको जानता ।
कुछ अन्य मुझको शरण नाहीं है शरण निज शुद्धता ॥३८॥

है एक और अनेक तो भी नहिं तजे निजरूपता ।
कुछ अन्य मुझको शरण नाहीं है शरण निज शुद्धता ॥३९॥

है नित्य देहप्रमाण किंतु स्वभाव लोक प्रमाणता ।
कुछ अन्य मुझको शरण नाहीं है शरण निज शुद्धता ॥४०॥

कैवल्य से युगपत् सभी को देखता अरु जानता ।
कुछ अन्य मुझको शरण नाहीं है शरण निज शुद्धता ॥४१॥

है सहज सिद्ध विभावशून्य व कर्म से न्यारा स्वतः ।
कुछ अन्य मुझको शरण नाहीं है शरण निज शुद्धता ॥४२॥

जो शून्य होकर शून्य नाहीं कर्म वर्जित ज्ञानता ।
कुछ अन्य मुझको शरण नाहीं है शरण निज शुद्धता ॥४३॥

परवत्थू परमहिला पमादजोएण अज्जियं पावं ।
अण्णा वि अकरणीया मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥३५॥

एक्को सहावसिद्धो सो अप्पा वियप्पपरिमुक्को ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥३६॥

अरस अरूप अगंधो अव्वाबाहो अणंतणाणमओ ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥३७॥

णेयपमाणं णाणं समए एगम्हि होदि ससहावे ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥३८॥

एयाणेयवियप्पपसाहणे सगसहावसुद्धगई ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥३९॥

देहपमाणो णिच्चो लोयपमाणो वि धम्मदो होदि ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥४०॥

केवलदंसण-णाणं समए एगम्हि दुण्णि उवजोगा ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥४१॥

सगरूवसहजसिद्धो विहावगुणमुक्ककम्मवावारो ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥४२॥

सुण्णो णेव असुण्णो णोकम्म-कम्मवज्जिओ णाणं ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥४३॥

है भिन्न सर्व विकल्प सुखमय ज्ञान से नहिं भिन्नता।
कुछ अन्य मुझको शरण नाहीं है शरण निज शुद्धता ।४४।।

है अछिन्न अछिन्न नाहीं अगरुलघुत्व प्रमेयता।
कुछ अन्य मुझको शरण नाहीं है शरण निज शुद्धता ।।४५।।

शुभ या अशुभ से भिन्न होकर निज स्वभाव सुलीनता।
कुछ अन्य मुझको शरण नाहीं है शरण निज शुद्धता ।।४६।

स्त्री पुरुष नहिं षंढ नाहीं अरु पाप पुण्य विभिन्नता।
कुछ अन्य मुझको शरण नाहीं है शरण निज शुद्धता ।।४७।।

तेरा नहीं कोई न तू है बन्धु बान्धव अन्य का।
है शुद्ध एकाकी सदा तूं आप रहता आपका ।।४८।।

जिन धर्म की सेवा तथा शासन सुप्रेमी बन सदा।
संन्यास पूर्वक मरण होवे प्राप्त हो निज सम्पदा ।।४६।।

जिनदेव ही इक देव हैं जिनदेव से ही प्रीत है।
जो दया मय धर्म बस उस धर्म से ही जीत है ।।५०।।

साधू महा साधू महा जो हैं दिगम्बर साधुजन।
पाऊँ न जब तक मुक्ति तब तक भाव ये होवें सुमन ।।५१।।

व्यर्थ मेरा काल बीता दुख अनन्तों भोग कर।
जिन कथित नहिं संन्यास पाया यत्न से सुविचारकर ।।५२।।

णाणाउ जो ण भिण्णो वियप्पभिण्णो सहावसोक्खमओ ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ।।४४।।

अच्छिण्णोऽवच्छिण्णो पमेयरूवत्तगुरूलहू चेव ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ।।४५।।

सुह-असुहपावविगओ सुद्धसहावेण तम्मयं पत्तो ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ।।४६।।

णो इत्थी ण णउंसो णो पुंसो णेव पुण्ण-पावमओ ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ।।४७ ।।

ते को वि ण होदि सुजणो तं कस्स ण बंधवो ण सुयणो वा ।
अप्पा हवेइ अप्पा एगागी जाणगो सुद्धो ।।४८।।

जिणदेवो होउ सया मई सुजिणसासणे सया होउ ।
संणासेण च मरणं भवे भवे मम संपत्ती ।।४९।।

जिणो देवो जिणो देवो जिणो देवो जिणो जिणो ।
दया धम्मो दया धम्मो दया धम्मो दया सया ।। ५० ।।

महासाहू महासाहू महासाहू दिगंबरा ।
एवं तच्चं सदा हुज्ज जाव णो मुत्तिसंगमो ।।५१।।

एवमेव गओ कालो अणंतो दुक्खसंगमे ।
जिणुवदिट्ठसंणासे ण यत्तारोहणा कया ।।५२।।

इस समय जो प्राप्त की आराधना जिन देव की।
होगी न मेरी कौनसी शुभ सिद्धि अब स्वयमेव ही ॥५३॥
सद्धर्म की महिमा बड़ी है लब्धि भी निर्मल अहो।
जिससे मिला सम्प्रति मुझे अनुपम महासुख यह अहो ॥५४॥
विधि वन्दना प्रतिक्रमण की आलोचना भी है यही।
आराधता जो सविधि उसको प्राप्त होती सुख मही ॥५५॥

संपइ एव संपत्ताराहणा जिणदेसिया ।
किं किं ण जायदे मज्झं सिद्धिसंदोहसंपई ॥५३॥

अहो धम्मो अहो धम्मो अहो मे लद्धि णिम्मला ।
संजाया संपया सारा जेण सुक्खमणूवमं ॥ ५४ ॥

एवं आराहंतो आलोयण वंदणा पडिक्कमणं ।
पावइ फलं य तेसिं णिद्दिट्ठं अजियबंम्मेण ॥५५॥

सामायिक पाठ

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम् ।
मध्यस्थ्यभावं विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव ॥१॥
शरीरतः कर्तुमनन्तशक्तिं विभिन्नमात्मानमपास्तदोषम् ।
जिनेन्द्र ! कोषादिव खड्गयष्टिं तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ॥२॥
दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे योगे वियोगे भुवने वने वा ।
निराकृताशेषममत्वबुद्धेः समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ ॥३॥
मुनीश ! लीनाविव कीलिताविव स्थिरौ निखाताविव बिम्बिताविव ।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव ॥४॥
एकेन्द्रियाद्या यदि देव ! देहिनः प्रमादतः सञ्चरता इतस्ततः ।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडितास्तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा ॥५॥
विमुक्तिमार्गप्रतिकूलवर्त्तिना मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया ।
चारित्रशुद्धेर्यदकारि लोपनं तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो ॥६॥
विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं मनोवचःकायकषायनिर्मितम् ।
निहन्मि पापं भवदुःखकारणं भिषग्विषं मन्त्रगुणैरिवाखिलम् ॥७॥
अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं जिनातिचारं सुचरित्रकर्म्मणः ।
व्यधामनाचारमपि प्रमादतः प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥८॥

क्षतिं मनःशुद्धिविधेरतिक्रमं व्यतिक्रमं शीलवृतेर्विलंघनम् ।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम् ॥९॥

यदर्थमात्रापदवाक्यहीनं मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम् ।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी सरस्वती केवलबोधलब्धिम् ॥१०॥

बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः ।
चिन्तामणिं चिन्तितवस्तुदाने त्वां वन्द्यमानस्य ममास्तु देवि ॥११॥

यः स्मर्यते सर्वमुनीन्द्रवृन्दैर्यः स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रैः ।
यो गीयते वेद-पुराण-शास्त्रैः स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१२॥

यो दर्शनज्ञानसुखस्वभावः समस्तसंसारविकारबाह्यः ।
समाधिगम्यः परमात्मसंज्ञः स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१३॥

निषूदते यो भवदुःखजालं निरीक्षते यो जगदन्तरालम् ।
योऽन्तर्गतो योगिनिरीक्षणीयः स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१४॥

विमुक्तिमार्गप्रतिपादको यो यो जन्ममृत्युव्यसनाद्यतीतः ।
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलङ्कः स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥१५॥

क्रोडीकृताशेषशरीरवर्गा रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः ।
निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१६॥

यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तेः सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबन्धः ।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१७॥

न स्पृश्यते कर्मकलङ्कदोषैः यो ध्वान्तसंघैरिव तिग्मरश्मिः ।
निरञ्जनं नित्यमनेकमेकं तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१८॥

विभासते यत्र मरीचिमाली न विद्यमाने भुवनावभासि ।
स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१९॥

विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम् ।
शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तं तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२०॥

येन क्षता मन्मथमानमूर्च्छाविषादनिद्राभयशोकचिन्ताः ।
क्षयोऽनलेनेव तरुप्रपञ्चस्तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२१॥

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी विधानतो नो फलको विनिर्मितः।
यतो निरस्ताक्षकषायविद्विषः सुधीभिरात्मैव सुनिर्मितो मतः ॥२२॥

न संस्तरो भद्रसमाधिसाधनं न लोकपूजा न च संघमेलनम् ।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं विमुच्य सर्वामपि बाह्यवासनाम् ।२३।

न सन्ति बाह्या मम केचनार्था भवामि तेषां न कदाचनाहम् ।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं स्वस्थः सदा त्वं भद्र मुक्त्यै ॥२४॥

आत्मानमात्मन्यवलोकमानस्त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः ।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र स्थितोऽपि साधुर्लभते समाधिम् ॥२५॥

एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा विनिर्मलः साधिगमस्वभावः ।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः ॥२६॥

यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः ।
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये ॥२७॥

संयोगतो दुःखमनेकभेदं यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी ।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम् ॥२८॥

सर्वं निराकृत्य विकल्पजालं संसारकान्तारनिपातहेतुम् ।
विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे ॥२९॥

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा फलं तदीयं लभते शुभाशुभम् ।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं स्वयंकृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥३०॥

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो न कोऽपि कस्यापि ददाति किञ्चन ।
विचारयन्नेवमनन्यमानसः परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम् ॥३१॥

यैः परमात्मामितगतिवन्द्यः सर्वविविक्तो भृशमनवद्यः ।
शश्वदधीता मनसि लभन्ते मुक्तिनिकेतं विभववरं ते ॥३२॥

इति द्वात्रिंशतावृत्तैः परमात्मानमीक्षते ।
योऽनन्यगतचेतस्को यात्यसौ पदमव्ययम् ॥

सामायिक पाठ

[श्री प्रेमलता देवी 'कौमुदी']

(१)

अखिल विश्वके सब जीवोंपर, प्रेम रहे निष्काम उदार।
प्रमुदित पुलकित फूल उठे मन, देख गुणी-मंडल साकार॥
दीन दुखी असहाय अनाथों पर, नित बहे दया की धार।
राग द्वेष धारूँ नहिं अज्ञानी, मूढ़ोंकी कुमति निहार॥

(२)

विभुवर! शक्ति मुझे दो ऐसी, निश्चल निर्भय शुचि अविराम।
शुभ चैतन्यमयी निर्दोषो, अनुपम सद्गुणयुत अभिराम॥
ज्योतिर्मयी विमला अविनाशी, शक्ति अनंतमयी अविकार।
दूर करूँ आत्मा शरीरसे, यथा म्यानसे भिन्न दुधार॥

(३)

शत्रु मित्र में रुदन हासमें, रहे नहीं बिलकुल ममता।
इष्ट वियोग अनिष्ट योगमें, धारूँ मैं अद्भुत समता॥
नाथ! विश्वमें बिखरे उलझे, माया-बन्धन को तोड़ूँ।
तेरा मेरा भेद विषमता से, अपने मन को मोड़ूँ॥

(४)

यतिवर! तेरे भव्य चरण, फैलावें मनमें दिव्य प्रकाश।
जिसमें रह न सके किंचित् भी, अवगुण दुष्कर्मोंका वास॥
मूर्तिमान पद बनकर तेरे, गुण उर में आसीन रहें।
चित्र लिखित, प्रतिबिंबित, कीलित से मुझमें ही लीन रहें॥

(५)

इधर उधर मन मौजो विचरण, करनेमें मेरे द्वारा।
एकेन्द्रिय आदिक कोई भी, हो जिसको जीवन प्यारा॥
नाथ भूलसे या प्रमाद वश, विभ्रमतासे दुख पावे।
तो मेरा दुष्कृत्य आज, प्रायश्चित जल से धुल जावे॥

(६)

निजानन्द शुभ रत्नत्रय मय, आकुलता बिन सम्यक् राह।
विस्मृत कर इन्द्रिय कषाय वश, यदि मैं चलदूँ उलटी राह॥
दुराचरण पंकिल दुष्कर्मोंके, यदि हो जाऊँ आधीन।
तो मेरा मन शुद्ध जानकर, सब हो जावे नाथ विलीन॥

(७)

दुर्वचनोंसे अस्थिर मनसे, औ शरीर निर्मित दुष्पाप।
अगम संकटों को कटु जड़ में, देने वाले विषमाताप॥
औषधियों से निपुण वैद्य, करता जैसे विष का संहार।
आलोचना घृणा गर्हा से, दूर करूँ यह अक्षम भार॥

(८)

दुर्मति वश हो सदाचारको, मैंने कलुषित कर डाला।
शास्त्र वाक्य वर्णित चरित्र तज, दुराचार को है पाला॥
वेपरवाही से प्रमाद से, अनाचार औ दुर्व्यवहार।
इन्हें मिटाने को बरसाऊँ, मैं प्रायश्चित - वारिद - धार॥

(९)

चंचल मनको बना निरंकुश, मैंने जो अतिक्रमण किया।
निर्मल व्रतमें दाग लगाकर, मैंने है व्यतिक्रमण किया॥
नश्वर आकर्षक विषयों में, मस्त हुआ है मन मेरा।
अनाचार अतिचार लगाया, मुझे कुमति ने आ घेरा॥

(१०)

शब्द वाक्य पद मात्राकी, त्रुटियों सह भाव रहित बेकार।
कहे निरर्थक वचन भूलसे, मैंने दुखदाई सविकार॥
क्षमा करो, हे देवि! जान कर मुझे मूढ़मति अज्ञानी।
परम ज्ञान की सुधा पिलादो, हे करुणामयि! जिनवाणी!!

(११)

हे श्रद्धेय शारदे! तुझको, मेरा सौ सौ बार प्रणाम।
तेरी अनुकम्पासे पाऊँ, परमानन्दमयी शिवधाम॥
स्वात्मध्यान बल रत्नत्रय निधि, दो चितामणि सी दानी।
शुभ्र स्वच्छ अन्तर करदो तुम, मेरा सरस्वति कल्याणी॥

(१२)

ऋषि मुनि मेधावान सहस्रों, जिनका स्मृति सामोद करें।
चन्द्रेश्वर सुरेन्द्र जिनकी स्तुति, गाते हैं आमोद धरें॥
वेद पुराण शास्त्रमें अंकित, है जिनका यशमय संसार।
हे देवोंके देव पधारो, खुला हुआ है मानस द्वार॥

(१३)

दर्शन ज्ञान अनन्त सौख्यमय, शुद्ध आत्मभावोंमें लीन।
निर्विकार जग-दुखद-कालिमा-रहित, बना है जो स्वाधीन॥
ध्यान नयनसे देखा जाता, जो परमातम करुणागार।
हे देवोंके देव पधारो, खुला हुआ है मानस द्वार॥

(१४)

विकट दुरूह और क्षणभंगुर, काट दिया जग-माया-पाश।
जग कणकणका लखने वाला, पाया है कैवल्य प्रकाश॥
ऋषियोंके प्रदीप, मम मनमें, हो जाओ चित्रित अविकार।
हे देवोंके देव पधारो खुला हुआ है मानस-द्वार॥

(१५)

सुखद शांतिमय मुक्ति मार्गका, पंथ प्रदर्शक जो प्यारा।
जन्म, मृत्यु, सुख, दुख, भयके, जड़ बन्धनसे है न्यारा॥
है त्रिलोकदर्शी अकलंको, जो अगम्य उत्कृष्ट उदार।
हे देवोंके देव पधारो खुला हुआ है मानस द्वार॥

(१६)

विभ्रम वश भोले जीवोंने, विस्मृत कर निज गुण पावन।
रागादिक मिथ्या भावोंसे, जोड़ लिया है अपनापन॥
जो कुभावसे रहित, ज्ञानमय, शुद्ध शांतिदेवी अवतार।
हे देवोंके देव पधारो खुला हुआ है मानस द्वार॥

(१७)

अनुपम अद्भुत व्यापक निर्मल जिसका विश्वप्रकाशी ज्ञान।
सर्व सिद्ध कृतकृत्य बुद्ध जो, कर्म बन्धनोंसे अम्लान॥
शुद्ध भावसे अनुभव जिनका, हर लेता है सभी विकार।
हे देवोंके देव पधारो खुला हुआ है मानस द्वार॥

(१८)

कर्म कलंक दोष श्यामांचल, कर पाया न जिसे गुंठन।
तमका दृढ़ दुर्भेद्य चीर पट, निकला रवि जाज्वल्य-वदन॥
है अनेकमें एक नित्य नित जो है परम निरंजन रूप।
शरण तुम्हारी ली अब हमने, हे सर्वज्ञ आप्त चिद्रूप॥

(१९)

बहिर्जगत का ज्योतिर्कर्ता, जहां न जा सकता दिनकर।
ऐसे आत्म विश्वमें निरुपम, ज्ञान सूर्य आलोकित कर॥
दिव्य दीप्ति दात्री आत्मामय, रहता है जो जगती भूप।
शरण तुम्हारी ली अब हमने, हे सर्वज्ञ आप्त चिद्रूप॥

(२०)

जिनके शान्त भव्य अवलोकनसे, उनके जैसा ही ज्ञान।
विश्ववस्तुदर्शी दर्पणवत्, हो जाता है केवल ज्ञान॥
शीत प्रशान्त निष्कर्म शुद्ध, उन्मुक्त परम चैतन्य स्वरूप।
शरण तुम्हारी ली अब हमने, हे सर्वज्ञ आप्त चिद्रूप॥

(२१)

मदन, मान, तृष्णा, कषाय, दुख, निद्रा, चिंता, स्वेद विषाद।
मोहरू कंटक वन उजाड़कर, किया स्वात्मगृहको आज़ाद॥
जैसे तुंग वनस्पतियाँ, ज्वालासे होतीं भस्मीभूत।
शरण तुम्हारी ली अब हमने, हे सर्वज्ञ आप्त चिद्रूप॥

(२२)

साम्यभाव सामायिक मोती, मिलता नहीं शिलाओंपर।
निर्भूत धरा तृण काष्ट आदि से निर्मित वन शालाओंपर॥
इन्द्रिय द्वेष कषाय बिना वह है उस अनन्तका धन।
जिसके लिये शुद्ध समुचित है, निर्मल आत्माका आसन॥

(२३)

नहीं सांथरा आत्मरूप दर्शक हैं सामायिक-साधन।
नहीं लोककी जन पूजा है, नहीं संघका सम्मेलन॥
तोड़ विश्व की बाह्य वासना, जनित दुखद अति मायाजाल।
आत्मिक विशद ज्ञानमें तत्पर, धारणकर सुगुणों की माल॥

(२४)

आत्मरूप मैं हूं इस जगमें कोई नहीं कुछ भी मेरा।
नहीं किसी का हूँ अतिशय भ्रम है ये मेरा तेरा॥
हे मन ऐसी असंदिग्ध, श्रद्धा कर सबसे मुख मोड़ो।
बनो मुक्त स्वाधीन विरागी, मिथ्या अस्थिर सुख छोड़ो॥

(२५)

खोल बाह्य पट निरख स्वात्ममें, परमातम सुगुणोंका कोष।
शुद्ध ज्ञान दर्शन अविनाशी निर्भय शुचितर औ निर्दोष॥
कर एकाग्र निरंकुश मनको, जो करता सच्चा साधन।
जल थल नभपर भी वह ऋषिवर, लखता है स्वात्मा पावन॥

(२६)

मैं हूँ एक परम अविनाशी, अतिशय गुणमय ज्ञान स्वभाव।
रागादिक विभिन्न हैं मुझसे, दुर्गतिदाता कुटिल कुभाव॥
मैं तो हूँ चिर शाश्वत अक्षय, अति प्रशस्त अति सुन्दरतर।
जग-माया औ अशुचि देह सब, है मिथ्या अस्थिर नश्वर॥

(२७)

जब काया भी बनी पराई, तब आत्मीय रहा फिर कौन।
जग है तनका संगी साथी, मैं एकाकी स्थिर मौन॥
चर्मावरण रहित करनेसे, जैसे तनपुर की गलियाँ।
कैसे कहो ठहर सकती हैं, चर्माश्रित रोमावलियाँ॥

(२८)

विषम संटकाकीर्ण विश्व वन में मैंने यूँ ही बेकार।
अपना अपना कहकर लादा, दुर्गम कटु कष्टों का भार॥
मोहादिक से पिण्ड छुड़ाकर, आकुल मर्माहत ये मन।
मुक्ति प्रेयसी मिलन हेतु, करता स्वात्मा स्वरूप साधन॥

(२९)

हे निर्मल मन जग के कारण, रागादिक जो मिथ्या भाव।
इनसे दूर-दूर रह आराधन कर अपना शुद्ध स्वभाव॥
देख देख ओ मूढ़! आत्मको, पंकिल जगमें पद्म समान।
अरे उसी में देख छिपा है, परमातम सद्गुण की खान॥

(३०)

कर सुकर्म तू विश्व क्षेत्र में, है केवल कृषिकार कंसान ।
जैसा बीज वपन होगा फल पावेगा अनुरूप महान ॥
पा सकता है नहीं कभी मन, तू परकृत कर्मोंका फल ।
और न हो सकता है तेरे, कर्मों का परिणाम विफल ॥

(३१)

हे पावन मन तुझे शुभाशुभ, फलदाता तेरे ही कर्म ।
और न कोई कुछ भी देगा, इससे कर तू सदा सुकर्म ॥
छोड़ छोड़ तू पर अवलम्बन, रह अपने पर हो निर्भर ।
निज आत्मा को दिव्य शक्तिसे, अन्तर्हित कर अपना उर ॥

(३२)

विश्व विमोहक प्रबल कामनाओं पर जिनको मिली विजय ।
सुर नर जगके वन्दनीय जो, बने चिरन्तर अभय अजय ॥
अमित ज्ञानमय मुनिवर जिनके, ध्याते हैं नित युगल चरण ।
ऐसे शुद्ध चिदातम का तू, आराधन कर निर्मल मन ॥

(३३)

ये बत्तिस उन्मुक्त भावना, माला को मौक्तिक लड़ियाँ ।
अनुपम सुखमय चिर अविनश्वर, शिव मंजिलको हैं कड़ियाँ ॥
इनका अनुभव करते हैं जो, सम्यक् शुचि सच्चे मनसे ।
पाते हैं वे निजानन्द होते, स्वतन्त्र जग बन्धन से ॥